

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180370

UNIVERSAL
LIBRARY

रामचरित्र

(नाटक)

रचयिता

रावराजा डॉ० श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०, डॉ० लिट०

रायबहादुर पं० शुक्देवबिहारी मिश्र, बी० ए०

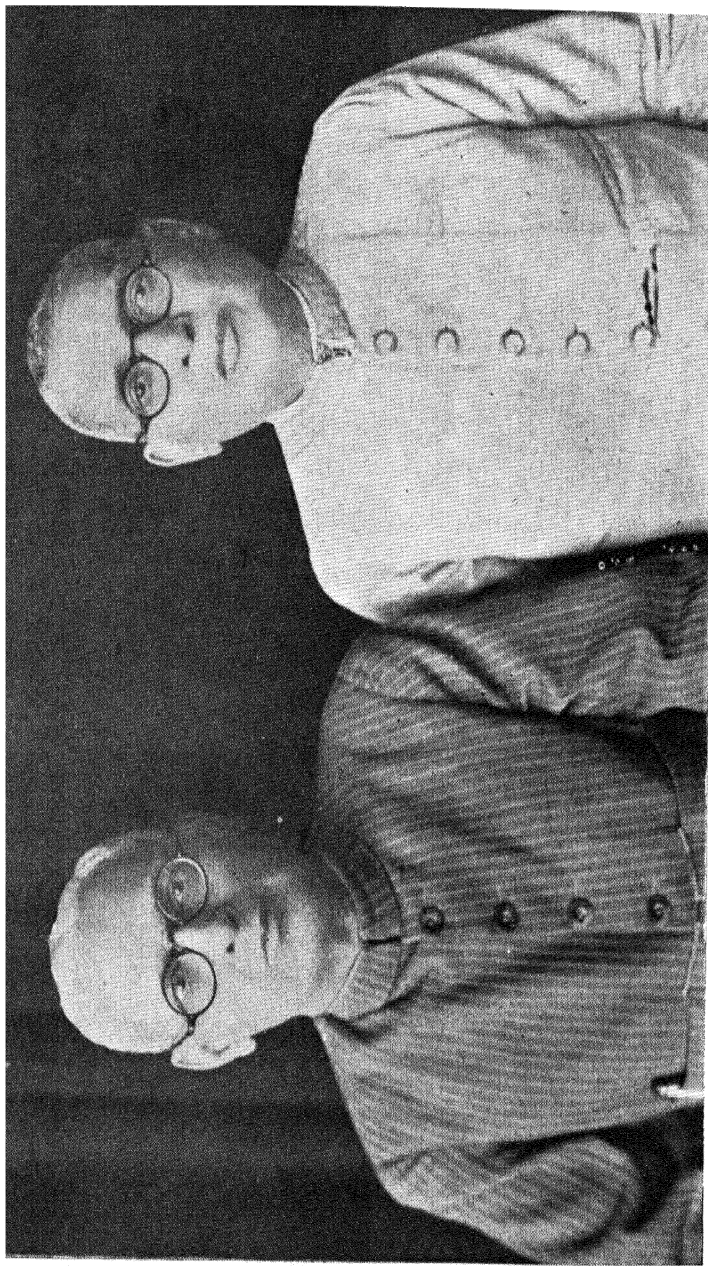
(मिश्रवन्द्यु)

प्रकाशक

अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स

लखनऊ

मुद्रक
भार्गव-प्रिटिंग-वक्स
लखनऊ



राजराजा डॉ० श्यामबिहारी मिश्र

रायबहादुर पं० शुक्रदेवबिहारी मिश्र

भूमिका

इस नवीन प्रकार के एक परम प्राचीन-विषयक नाटक को विज्ञ पाठकों को अर्पित करते हुए हमारी यही प्रार्थना है कि इस पर निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय। हर व्यक्ति को अपना स्वच्छन्द मत प्रकट करने का अधिकार है, और इस पर विरोधी विचारवालों तक को क्रोध-प्रकाशन की शिष्ट समाज में आवश्यकता नहीं मानी जाती। हमारा दृढ़ मत है कि स्वयं परब्रह्म कभी अवतार नहीं ले सकता: “अवतार” को हम विशेष ईश-अंश-भव मनुष्य मानते हैं, क्योंकि हमारी समझ में सभी मनुष्यों ही क्यों, जीव-धारी मात्र, अथवा यों कहिए कि सर्व प्रकार के पदार्थों तक, में ईश्वर की सत्ता होती है। इससे हम भगवान् रामचन्द्र को एक उच्च कोटि का मनुष्य ही मानते हैं, न कि ईश्वर का रूप। हमारा मत है कि—

नेति-नेति ईश्वर को वेद औ पुराण भाखै,

ताके बल तेज को न अन्त दग्गानो है।

होत अवतार जो विमेष ईश-अंश-भव,

ताहू को न बल-अंत सहज लग्यानो है ॥

तदपि अमोघ ईश बल की सकै न करि

तुलना कळूक अवतार मन मानो है।

ईश को अनादर कियो न तिन, जिन करि

या विधि विचार अवतार मनमानो है ॥

अतः राम-कृष्णदि को साक्षात् ईश्वर माननेवालों से हमारी यही प्रार्थना है कि कृपया हमारी भृष्टता को क्षमा करें। पर हम ऐसा मानने में नितान्त असमर्थ हैं, यद्यपि इन महापुरुषों का मान हमारी निगाह

में बहुत ही ऊँचा है। इन्हीं विचारों के अनुसार इस नाटक में वर्णित हमारे सभी कथन चलेंगे। स्वयं गीता भी यही कहती है।

उधर रावण को भी हम पूर्णरूपेण सभ्य सम्राट् मानते हैं, यद्यपि साधारण राजाओं की सभ्यता गिरी हुई थी और वे नराहार तक करते थे। श्रीराम के सहायक “वानर और भालु” हमारी समझ में मनुष्य ही थे, और स्वयं “राक्षस” भी मनुष्य (द्राविड़) थे। इस ग्रन्थ में असम्भव वर्णनों और कटुवाक्यों का पूर्ण अभाव मिलेगा, तथा सभी ठौर पर शिष्टता का पूरा ध्यान रक्खा गया है। नीचे समाजवालों में उनके ही योग्य कथन हैं ही। इस नाटक को भली भाँति समझने के लिए तत्कालीन राजनैतिक इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। इससे हम उसका थोड़ा-सा दिग्दर्शन करा कर आगे बढ़ना उचित समझते हैं।

भारतवर्ष में सबसे पहले कोलों, द्राविड़ों और नागों का निवास था। ये तीनों जातियाँ काली थीं। नागों की कोई पृथक् जाति थी अथवा ये इन्हीं दोनों या किसी एक की शाखा थे, सो बात अभी तक प्रायः अज्ञात है। कोल उत्तर पूर्वी भारत के निवासी थे तथा द्राविड़ दक्षिणी भारत अथवा बलूचिस्तान के। कोल शिकारी मात्र थे तथा द्राविड़ कृषक। द्राविड़ भारत से बलूचिस्तान गये या वहाँ से यहाँ आये, सो अब तक अनिश्चित है। इन्होंने कोलों को हराया। सब से पुरानी द्राविड़ सभ्यता हड़प्पा (पंजाब) में मिली है जो ईसा से प्रायः तैंतीस सौ वर्ष पुरानी है। उससे पीछे मोहंजोदड़ो की सभ्यता है जो ईसा से प्रायः २७५० वर्ष पहले की है। उपर्युक्त कथनों के विषय में बहुत-सी और बातें भी ज्ञात हैं जिनका विवरण यहाँ अनावश्यक है। हमारे बुद्ध पूर्व के भारतीय इतिहास में प्राचीन विषयों का कुछ विशेष कथन है।

वैवस्वत मनु अपने दामाद बुध को लेकर बाहर से भारत में आये। बुध चन्द्र के पुत्र थे अथच वैवस्वत सूर्य के। इसी से इन दोनों के वंश-धर चन्द्रवंशी तथा सूर्यवंशी कहलाते हैं। ये सूर्य और चन्द्र मनुष्य

थे, आकाशी ग्रह नहीं। मनुपुत्री इला बुध को ब्याही थीं, जिससे उनके वंशधर ऐल भी कहलाते थे। दोनों सूर्य और चन्द्र वंश चलते मनु ही से हैं, एक उनके पुत्रों से तथा दूसरा पुत्री से। रामचन्द्र मनु से ३६वीं पीढ़ी पर थे तथा युधिष्ठिर ५१वीं पर। त्रेता युग (मनु से राम तक) में ६५० वर्ष बैठते हैं, तथा द्वापर (राम से युधिष्ठिर तक) में प्रायः ३००। इधर युधिष्ठिर से गौतम बुद्ध तक पंडितों ने चार शताब्दियाँ मानी हैं। बुद्ध का जन्म ५६३ ईसा पूर्व में माना जाता है। इस हिसाब से जोड़ने में महाभारतीय युद्ध का समय ६५० ई० पू० के निकट बैठता है और लंका का १३०० ई० पू० के आस पास। आदिम कलिकाल महाराजा परीक्षित के पीछे बुद्ध के समय तक हम समझते हैं। इस हिसाब से त्रेता का आरम्भ १६५० ई० पू० पर बैठता है और सत्ययुग का २७०० ई० पू० के निकट। इन समयों के ऐतिहासिक मामले बहुत कुछ ज्ञात हो चुके हैं, किन्तु यहाँ उनका कहना विषयान्तर होगा।

श्रीरामचन्द्र नाटक में जो घटनायें कही गई हैं, वे प्रायः सबकी सब ऐतिहासिक हैं, केवल विभीषण और रावण का युद्धक्षेत्र में मेल नाटकत्व के लिये लिखा गया है। वैदेह वंश के पूर्व मिथिला में माथव कुल शासक था। हमारे यहाँ वैदेह वंश उसका दौहित्र माना गया है जो बात कल्पना के सहारे लिखी गई है। वैशाल कुल परशुराम के माता-मह का वंश था, ऐसा बहुत करके ठीक होगा, किन्तु पूर्णतया सिद्ध नहीं है। वैशाल और कान्यकुब्ज राज्यों ने परशुराम की सहायता की अवश्य होगी, किन्तु ऐसा साफ़-साफ़ कहीं लिखा नहीं है; केवल घटनाचक्र के मनन से समझ ठीक पड़ता है। राम ने अगस्त्य ऋषि की जलसेना को थलदल बनाया, ऐसी पुराणों में अकथित घटना भी अन्दाज़ से ठीक दीखती है। हमारे शेष सभी नाटकीय कथन ऐतिहासिक हैं।

वैवस्वत मनु से रामचन्द्र के समय तक पुराणों में बारह विविध

राजकुलों की वंशावलियाँ कथित हैं । रामचन्द्र के जो लोग समकालीन लिखे गये हैं, वे पुराणों या वेदों से समर्थित हैं । राम के बेटे कुश और लव थे, भरत के पुष्कर और तक्ष, लक्ष्मण के अंगद और चन्द्रसेन, तथा शत्रुघ्न के सुबाहु और शत्रुघाती । माथुर राज्य भीमयादव का था, और उनकी आर से लवणामुर वहाँ का शासक था । उसके कुप्रबन्ध से ऊबकर वहाँ के कुलु ब्राह्मणों ने राम से पुकार की । आपने भरत को वहाँ भेजकर माथुर राजा बनाने का विचार किया । इस पर शत्रुघ्न के आपत्ति की कि पहले भी भरत १४ वर्ष अयोध्या के पालक रह चुके थे तथा लक्ष्मण पर विशेष अनुग्रह था ही । क्या सबसे छोटे भाई पर कुलु भी क्या नहीं योग्य थी ? यद्यपि गुरु बन्धुत्व के कारण भरत इस मान के सर्वथा योग्य थे, फिर भी उन्होंने शत्रुघ्न को ही भेजवाया । इन्होंने लवण को मारकर १२ वर्ष मथुरा का राज्य किया और इनके पीछे इनका बेटा शासक हुआ, किन्तु राम के भवन्तु अस्त होने के पीछे भीम ने अपना वह राज्य लीन लिया । अयोध्या की कुलु प्रजा ने सीता के दश मास लंका में रहने से उनके चरित्र पर सन्देह किया; और यद्यपि राम निश्चयपूर्वक उन्हें पवित्र समझते थे, तथापि आदर्श शासक होने में इन्होंने गुरुिणी सीताजी को वाल्मीकीय आश्रम को भेज दिया जहाँ उनके दोनों बमज बेटे हुये । जिस दिन मथुरा जाने के मार्ग में शत्रुघ्न वाल्मीकीय आश्रम में ठहरे थे, उसी दिन सीता के दोनों बेटों कुश-लव का जन्म हुआ था । अनन्तर अश्वमेध के सम्बन्ध में कुश-लव के मुख से रामायण का गान सुनकर राम ने सर्वमममत से उन्हें ग्रहण किया, तथा सीता का स्वर्गवास उसी क्षण हो गया । भरत के मामा युधाजित का राज्य गन्धर्वों ने उन्हें मारकर लीन लिया । यह सुनकर भरत ने मसेन वहाँ जाकर गन्धर्वों को पराजित करके राज्य फेर लिया, तथा स्वयं राजा न बनकर उसके दो भाग करके पुष्कर क्षेत्र पर पुष्कर पुत्र को स्थापित किया तथा तक्षशिला पर बेटे तक्ष को । इन स्थानों के नाम इन्हीं के नामों पर पड़े । समझ

पड़ता है कि ये राज्य मैकड़ों वर्ष स्थापित रहे, क्योंकि उन स्थानों के यही नाम अब तक चल रहे हैं ।

राम ने ज्येष्ठ पुत्र कुश को अयोध्या का युवराज बनाकर कुश-स्थली पर कुशावती में भी राज्य चलाने की आज्ञा दी । यह विन्ध्याचल के दक्षिण में है । राम के पीछे कुश अयोध्या में स्थापित हुए । लव को शरावती उपनाम उत्तर कोशल का राज्य मिला, जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी । यह ज़िता गोंडा बहराइच में है । कुश के वंश में राज्य तेरह-चौदह पीढ़ियों तक महाभारतकाल पर्यन्त चला, और तब शायद वह राज्य भी लववंशियों के अधिकार में आया । लववंशियों का राज्य चालीस पीढ़ियाँ तक गौतम बुद्ध पर्यन्त चलता रहा । गौतम बुद्ध भी इसी वंश में थे, तथा महाभारत के युद्ध में लववंशी बृहद्रथ अथच कुशवंशी अम्बष्ठ श्रुतायुध लड़े थे । आजकल उदय-पूर और नेपाल के शासक लववंशी हैं तथा जैपुर के कुशवंशी । लक्ष्मण के पुत्र अंगद को अंगदनगर का राज्य मिला । यह कारापथ में था । चन्द्रकेतु को मल्लदेश का चन्द्रावती राज्य मिला । कारापथ को भरत ने जीतकर तथा वहीं रहकर एक साल राज्य चलाया अथच अंगद को राज्य करने का ढंग सिखलाया । अन्त में उन्हीं को राज्य पर स्थापित करके आप अयोध्या वापस आये । सुबाहु को मथुरा का राज्य मिला था तथा शत्रुघाती को विदिशा का । इस प्रकार राम ने अपने दोनों पुत्रों तथा लुग्रों भतीजों को राजा बना दिया । भरतवंशी उत्तर-पश्चिमी क्षत्रियों में मिल गये । लक्ष्मण के वंशधरों का अब पता नहीं है । शत्रुघ्न के वंशधर राठौर कहलाते हैं । माड़वार में उन्हीं का राज्य है । भगवान् ने शत्रुघ्न, सुग्रीव और विभीषण को मिलाकर केवल अपने बाहुबल से तेरह राजाओं का अभिषेक किया । अंग, बंग, मत्स्य, शृंगवेरपुर, काशी (प्रतर्दन की राजधानी), सिन्धु-सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण कोशल, किष्किन्धा और लंका आपकी मित्र शक्तियाँ थीं ।

उस काल पुरोहित लोग केवल धार्मिक व्यक्ति न थे, वरन् राज्य

प्रबन्ध के सिद्धान्तों पर भी उनका हाथ रहता था। बड़ी-बड़ी आज्ञायें वही निकालते थे और मन्त्री लोग केवल उनके अनुसार कार्य चलाते थे। युवराज ही राजा का उत्तराधिकारी वयस्क होने पर बनाया जाता था। उसे राज्य-सम्बन्धी बहुतेरे अधिकार भी प्राप्त रहते थे। राजपुत्र के न होने पर भाई आदि भी युवराज बनाये जाते थे, जैसे दुर्योधन के युवराज भाई दुःशासन थे जो राजपुत्र की उत्पत्ति के पीछे भी बने रहे यद्यपि उत्तराधिकारी वही था। लंका से पलटकर राम ने जब राज्य सँभाला, तब भरत को युवराज बनाया। प्रबन्ध में लक्ष्मण अपने को ऐसा पटु समझते थे कि कभी-कभी राम की भी आज्ञा न मानते थे। एक बार आज्ञा-भंग से रुष्ट होकर राम ने इन्हें त्याग दिया, जिससे विषण्ण मन हो महल से निकल आप सीधे जाकर गुप्तार घाट में डूब मरे। प्रेम का यह प्रदर्शन राम से भी न देखा गया और भरत, शत्रुघ्न तथा सुग्रीव सहित ये भी गुप्तार घाट में डूब मरे। आप ऐसे प्रजाप्रिय थे कि हज़ारों अयोध्यावासियों ने भी इसी प्रकार आत्महत्या कर ली, जिससे नगर उजाड़-सा हो गया। पीछे कुश ने इसे फिर बसाया। राम द्वारा शम्भुक शूद्र मुनि वध काल्पनिक मात्र है। राम का राज्य इतना श्रेष्ठ और प्रजाप्रिय था कि सर्वोत्कृष्ट राज्य को यहाँ अब तक राम-राज्य कहते हैं। शूर्पणखा-विरूपकरण तथा आड़ से बालिवध की घटनाएँ हम काल्पनिक समझते हैं। दशरथ के समय में रावण, शम्भर, बर्चिन और भेद भारी द्राविड़ नरेश थे। रावण वैशालीवाले सूर्यकुल का वंशधर था। मनु वैवस्वत से इसकी ३५वीं पीढ़ी पड़ती थी। ऋग्वेद के अनुसार बर्चिन और भेद को उत्तर पांचालप्रति सुदास ने हराया। शम्भर को दिवोदास और दशरथ ने मिलकर जीता। दशरथ केवल राम के पिता होने से पूज्य न थे, वरन् वे भारी सम्राट् भी थे तथा भारत का एक बृहदंश उन्होंने जीता था। रावण की पराजय से द्राविड़ों की शक्ति भारत में टूट गई और आर्यों का बल अच्युत हो गया। युधि-

धिर के समय में भी कुछ द्राविड़ नरेश थे, किन्तु उनमें मुख्यता प्रायः कुछ भी न थी।

यह धार्मिक न होकर ऐतिहासिक नाटक है जिससे भक्ति तथा अवतार सम्बन्धी कथन इसमें नहीं किये गये हैं। भरद्वाज ऋषि वेदर्षि थे। उन्होंने राम और भरत का आतिथ्य किया था। इसका विवरण इसलिये नहीं हुआ कि यह एक साधारणी घटना थी। इसी भाँति शबरी, सुतीक्ष्ण आदि के कथन नहीं हुए हैं। ऐतिहासिक दृष्टिमात्र से यहाँ वर्णन हुए हैं। चरित्र-चित्रण पर ध्यान रक्खा गया है, और सभी पात्रों के चरित्र ऊँचे बनाने का प्रयत्न हुआ है।

लखनऊ

१८ मई, १९४१

विजयादशमी ४३

मिश्रबन्धु

रामचरित्र

(नाटक)

प्रथम अंक

पहला दृश्य

स्थान—अयोध्या, सम्राट् दशरथ का अन्तरंग सभाभवन

(सम्राट् दशरथ और साम्राज्ञी कौशल्या आसनों पर विराजमान हैं ।)

कौशल्या—अहोभाग्य, कि आज सम्राट् को मेरा स्मरण तो आया ।

दशरथ—तुम्हारा स्मरण नित्य ही होता है, आगिर साम्राज्ञी है कौन ?

कौशल्या—अब तो साम्राज्ञी नाम से जितनी चाहूँ प्रसन्नता प्राप्त कर लूँ । इन चरण-कमलों के दर्शनों का मुख दुर्लभ हो रहा है ।

दशरथ—प्रिये ! ऐसे वचन क्यों कहती हो ? मैं मदा से तुम्हारे कमल-वदन का भूंग बना रहता हूँ ।

कौशल्या—नाथ ! यह क्या कहते हैं ? हाँ, कभी ऐसा अवश्य था, किन्तु क्या अब भी मैं इस पवित्र चरण-रज के मस्तक पर रखने का गर्व कर सकती हूँ ?

दशरथ—इसमें संदेह ही क्या है ? मैं क्या सदैव की भौंति अब तक तुम्हारा उपासक नहीं बना हुआ हूँ ?

कौशल्या—(आँख से आँसू पोंछकर) यदि यही होता, तो रोना किस बात का था ? ऐसी दशा में साम्राज्ञी और बाबाता के भेदों पर मुझे नित्य क्यों विचार करना पड़ता ?

दशरथ—तुम्हारा यह प्राचीन भ्रम क्या कभी न मिटेगा ? बाबाता है कौन ? क्या कैकेयी तुम्हारी सहगामिनी-मात्र नहीं है ? उसके साथ मायके से दास-दासियाँ अधिक संख्या में आई, इसी से उसका सामान कुछ भव्य देख पड़ता है । स्वयं अयोध्या के लोग जितने तुम्हारे यहाँ हैं, उतने ही वहाँ । मैंने कभी क्या भेद किया ?

कौशल्या—यदि इतना ही होता तब भी कुछ न था; आपने विवाह से पूर्व उसी के भावी पुत्र को युवराज तक बनाने का वचन दे रक्खा है ।

दशरथ—इतनी ही भूल मुझसे सौन्दर्य-लोलुपतावश हो गई । उस काल मुझे कौन आशा थी कि मैं पुत्रवान होने को था ? कहने भर की बात समझ पड़ी और शीघ्रता में मुख से निकल गई ।

कौशल्या—इस कथन में भी बहुत कुछ तथ्यांश अवश्य है, किन्तु अब वही बात सामने भी आती देख पड़ती है । आज दिन भी भरत के जितने अनुयायी सेवक हैं उसके आधे भी मेरे बेटे के नहीं ।

दशरथ—यह भी तुम्हारा भ्रम ही भ्रम है । उस महल में सेवकों के आधिक्य से देखने भर को ऐसा समझ पड़ता है । वास्तव में मेरे चारों बेटे बराबर हैं । स्वयं राम को कोई असन्तोष नहीं है ।

कौशल्या—यह उनका मौजन्य है; वे तो भरत को भी अपने ही बराबर मानते हैं ।

दशरथ—राम का मौजन्य अवश्य श्लाघ्य है, किन्तु ताली एक हाथ से नहीं पिटती । भरत भी उनको क्या वैसा ही नहीं मानता ?

कौशल्या—इसमें अभी सन्देह नहीं है, किन्तु आगे कैसा होगा, सो ईश्वर ही जाने ।

दशरथ—इतनी दीर्घसूत्रता बेकार है । जिस ईश्वर ने राम को अलौकिक गुण दिये हैं वही कल्याणकर्ता भी है ।

कौशल्या—अच्छा, मैंने बहुत दिन हुये आपसे विनती की थी

कि मेरे भातृपौत्रघाती रावण से बदला लेना चाहिये। अभी तक इस विषय पर आपने यथायोग्य ध्यान न दिया।

दशरथ—ध्यान क्या दूँ? लंका तक सेना ले जानी अपने ही ऊपर विपत्ति लानी होगी। हमारे ही पूर्वपुरुष महाराज पुरुकुत्स ने केवल गान्धार तक जीतने के प्रयत्न में क्या धोखा नहीं खाया?

कौशल्या—ये प्राचीन युग की बातें हैं। स्वयं आप उत्तर पांचाल-नरेश दिवोदास के साथ रावण के साढ़ू शम्बर को गर्दवर्द किये बैठे हैं।

दशरथ—उस काल हम लोगों के दो साम्राज्यों ने मिलकर काम किया था; फिर भी जो कठिनता पड़ी थी, वह क्या तुमसे छिपी है?

कौशल्या—तो मैं भी जानती हूँ। उस दिन मैंने भी यही सोचा कि मेरी सपत्नी कैकेयी धन्य है।

दशरथ—यदि वह रथ-संचालन में महाप्रवीणा और कठिन युद्ध के समय धैर्यवती न होती, तो मेरे प्राण ही जा चुके थे।

कौशल्या—यह मैं भी समझती हूँ कि लंका पर धावा करना टेढ़ी खीर है; फिर भी बेचारे निष्पाप अनरण्य का खून बदले के लिये पुकारता है। क्या कहूँ, कोई युक्ति ध्यान में नहीं आती। यदि हिम्मत न दिखलावे तो क्षत्रियत्व ही क्या?

दशरथ—अच्छा, रावण के दो उपनिवेश जनपद और कामवन में हैं। यदि ठीक समझो तो उत्तरी भारतवाले इस दूसरे उपनिवेश के जीतने का प्रयत्न सीरध्वज जनक से मेल पैदा करके करूँ। बदले का आरम्भ उसे जीतने से होगा ही।

कौशल्या—जनक हैं अवश्य शूर, किन्तु जब से सांकाश्य जीतकर उन्होंने अपने भाई कुशध्वज को वहाँ का राजा बना पाया है, तभी से ऐसे कृतकार्य से हो गये हैं कि आगे बढ़ने की इच्छा ही नहीं करते। उन्हें वैद्यक-शास्त्र से ही समय नहीं मिलता। (प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जै जै सम्राट्! राजकुमार राम और भरत पधार रहे हैं।

दशरथ—आने दो । (प्रतीहारी का प्रस्थान, राजकुमारों का प्रवेश । वे दोनों माता पिता को प्रणाम करके और आशीर्वाद पाकर उन्हीं के समीप आसनों पर बैठते हैं ।)

कौशल्या—(भरत से) कहो बेटा ! प्रसन्न हो न ?

भरत—आपकी चरणरज के प्रसाद से बहुत सुखी हूँ ।

राम—पिताजी ! अभी किसी राजकीय विषय पर क्या कोई सलाह हो रही थी ?

दशरथ—तुम्हारी माता को भ्रातृवंश विरोधी रावण से बदला लिये बिना चैन नहीं है; इसी पर बात थी ।

राम—यह मुझसे भी माताजी कई बार कह चुकी हैं । अपने स्वजन का वध मुझे भी अस्वरता बहुत है । यदि आज्ञा हो तो कामवन पर धावा बोला न जाय ?

दशरथ—आपारे अनरण्य का विनाश हुये कुछ समय हो चुका है; आजकल कोई नवीन मामला होने से यह बात उठाई जाने के योग्य अवश्य होती । (प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जै जै सम्राट् ! गुरुवर वशिष्ठ पधारते हैं ।

दशरथ—सम्मानपूर्वक भेज दो । प्रतीहारी का प्रस्थान, गुरु वशिष्ठ का प्रवेश । सबका अभ्यर्थान । राजा प्रणाम करके उन्हें आसन बतलाता है । साम्राज्ञी और दोनों कुमार भी प्रणाम करते हैं और गुरु सबको आशीर्वाद देते हैं । सबका बैठना ।)

राम—गुरुवर ! मेरी इच्छा कामवन पर आक्रमण करने की है । पिताजी को विग्रह के लिये कोई नया कारण नहीं देख पड़ता । सुना है कि मर्षि विश्वामित्र आपके आश्रम पर इसी निमित्त पधारते हैं ।

वशिष्ठ—वे अभी यहाँ भी आने ही वाले हैं । ताड़का और उसके दोनों पुत्र मारीच-सुबाहु उनके साथ उपद्रव करते ही बहुत हैं ।

कौशल्या—यही विषय लेकर मामला उठाया क्यों न जाय ? (प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जै जै । महर्षि विश्वामित्र पधारते हैं । (सम्राट् स्वयं सवशिष्ठ तथा सप्त बाहर जाकर उन्हें आदम से लाते हैं । सम्राज्ञी भी अभ्यर्थान दे तथा प्रणाम करके आशीर्वाद पाती हैं और सब लोग यथास्थान बैठते हैं ।)

दशरथ— (विश्वामित्र से) ऋषिवर ! आज इस दाम पर अनायास कृपा हुई । कहिये शरीर स्वस्थ हैं न, और यज्ञाग्नि तथा शिष्य-मंडली पर कोई विघ्न तो उपस्थित नहीं होता ?

ऋषि विश्वामित्र—सम्राट् शिरोमणे ! हम सब लोग ईश्वर की कृपा से सकुशल और प्रसन्न हैं, किन्तु विघ्नों के विषय में जो पृच्छा हुई, सो जब तक हमारे आश्रम के पड़ोस में रावण का उपनिवेश स्थिर है, तब तक ऐसी बातें नित्य ही की घटनायें हैं ।

कौशल्या—इन राजाओं की सम्यक्ता ऐसी गिरी हुई है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का इनके विचार में कोई मान ही नहीं ।

राम—मैं समझता हूँ कि नरमहर्षण और धार्मिक असहिष्णुता दो ही इनके प्रधान दूषण हैं ।

भरत—यही दो क्या कम हैं ? फिर प्रजा पर अत्याचार की कोई सीमा नहीं ।

ऋषि विश्वामित्र—यह इनके कथनानुसार धार्मिक विरोध का ही अंग है । उपद्रव हैं बहुतेरे, किन्तु मुख्य यही दो हैं । फिर भी जैसा कि आपका विचार है, ये कम नहीं हैं ।

दशरथ—कम क्या, ऐसे कठोर उपद्रवों का अस्तित्व आर्य बल पर भी कलंक है । ऐसे दुष्टों का दमन करना हम लोगों का धर्म है ।

ऋषि विश्वामित्र—सम्राट् इसकी ग्लानि क्या करते हैं ? शम्बर का विनाश आपही ने क्या नहीं किया था ?

दशरथ—यह आपकी कृपा है कि उस कार्य का स्मरण दिलाते हैं ? किन्तु वह अब एक प्राचीन कथामात्र है; आजकल का इनका प्रचण्ड उपद्रव देखा नहीं जाता ।

गुरुवर—अवश्य; जब से रावण का उत्तरी भारतवाला उपनिवेश स्थापित हुआ है, तब से इन लोगों के अपक्रमों का स्मरण नित्यप्रति करना पड़ता है।

दशरथ—जब से सम्राट् सुदास का पतन आपसी भगड़ों से हुआ, तभी से भारतमाता का मुकुट कुछ प्रभाहीन सा दिखने लगा है।

ऋषि विश्वामित्र—यही बात है सम्राट्! शम्बर-विनाश से हम लोगों को दक्षिण तक आर्यसभ्यता-विस्तार की दृढ़ आशा हो गई थी, किन्तु आपसी बखेड़ों के कारण रावण ने बढ़कर जनस्थान और उत्तरी भारत में भी प्रभाव फैला ही लिया।

राम—क्या महाराजा कुरु से मेल करके कोई युक्ति नहीं लग सकती ?

ऋषि विश्वामित्र—उनके पिता संवर्ण का राज्य जब से सुदास ने छीना, तब से आर्य बल में ऐसा घुन लग गया कि कुछ कहते नहीं बनता।

दशरथ—मैंने उनको बहुत समझाया था कि आर्यों की ऐसी गृह-कलह ठीक नहीं; किन्तु जब से रावी पर उन्होंने दश नरेशों को हराया था, तब से उनके चित्त में कुछ ऐसी अहम्मन्यता सी आगई थी, कि अपने लिये वे कोई कार्य अशक्य ही नहीं समझते थे।

ऋषि विश्वामित्र—इसी से ऐसा शूर सम्राट् संवर्ण और कुरु के प्रयत्नों से असमय में ही कालकवलित हो गया। उधर कुरु अपना पुराना राज्य ही समेटने में ऐसे लगे हैं कि भारी भारतीय प्रश्नों की ओर से बिल्कुल मुख मोड़े हुये हैं।

राम—इधर हमारी माताजी को अनरण्यजी के विनाश की इतनी ग्लानि है कि जितना आवेश आर्य-सभ्यता के पतन से होना चाहिये उससे कम इस प्रश्न पर भी नहीं है।

भरत—फिर सुनते हैं कि इन्ही ऋषिवर (विश्वामित्र की ओर इंगित करके) का यज्ञ निशाचरों के मारे नहीं होने पाता।

ऋषि विश्वामित्र—इसीलिये तो मैं यहाँ आया ही हूँ। क्या कहूँ, निशाचरों की इतनी उद्वेगता देखी नहीं जाती।

राम—पिताजी ! क्या इसी ऋषि-धर्पण को लेकर हमें न प्रयत्न करना चाहिये ?

दशरथ—बेटा ! अभी तुम बच्चे हो; यदि कुछ करना ही योग्य समझा जायगा, तब मैं ही सैन्य संचालन करूँगा।

ऋषि विश्वामित्र—एक उपनिवेश-मात्र के लिये यदि स्वयं आप उठें, तब फिर बड़े-बड़े संग्रामों पर कौन नियुक्त होगा ? मैं समझता हूँ कि केवल पाँच सहस्र सेना के साथ कुमार राम ही भेज दिये जायँ।

भरत—मैं भी दादा जी के साथ अवश्य जाऊँगा।

दशरथ—अभी कम अवस्था और अपूर्ण सामरिक शिक्षा देखते हुये दुर्धर्ष राज्ञसों पर अकेले तुम लोगों के भेजने का साहस नहीं होता; क्यों न गुरुवर !

गुरुवर—कहना आपका था तो ठीक, किन्तु जहाँ महर्षि विश्वामित्र से अस्त्रसिन्धु एवं समरशास्त्र के अगाध पंडित उपस्थित हों, वहाँ आशंका को कोई स्थान कहाँ हो सकता है ? मेरी महती सेना को एक छोटे से ही दल से इन्होंने बेताब कर डाला था।

ऋषि विश्वामित्र (हँसकर) वह दिन अब कहाँ है ? जीती तो आप ही की सेना थी।

गुरुवर—उसकी संख्या देखते हुये हार में भी आप ही के रण-कौशल का प्राधान्य रहा। अन्त में जीते भी आप ही।

ऋषि विश्वामित्र—यह आपकी उदारता है कि ऐसा कहते हैं।

गुरु वशिष्ठ—मेरी समझ में इनके होते हुये राम निशाचरों पर अवश्यमेव विजयी होंगे। कुमारों को आप समरशास्त्र एवं शस्त्रास्त्र की उच्च शिक्षा देवेंगे ही, वरन् इसी बहाने से उनकी शिक्षा भी पूर्ण हो जायगी।

ऋषि विश्वामित्र—हार-जीत दैवाधीन होती है। शिक्षा तो दूँगा ही।

राम—पिताजी ! फिर अब आज्ञा दे ही दीजिये ।

भरत—मेरी भी यही विनती है ।

कौशल्या—अब आप भ्रम छोड़ दीजिये ।

दशरथ—जब सबकी सम्मति है तब यही सही । फिर भी पुत्र पर माता पिता दोनों का समान अधिकार है, सो (भरत से) तुम भी माता से आज्ञा प्राप्त कर लो ।

भरत—माताजी तो सामने ही विराजमान हैं और आज्ञा भी दे रही हैं ।

कौशल्या—फिर भी बदन कैकेयी से पूछकर तब निश्चय करो ।

राम—वे मान ही जायेंगी, और यदि नाहीं कर दिया तो लक्ष्मण मेरे साथ चले जायेंगे । माता सुमित्रा ऐसी बातों में सदा सन्नद्ध रहती हैं ।

भरत—यह भी ठीक है, किन्तु चलूँगा मैं ही ।

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

स्थान—तपोवन का मार्ग ।

(ऋषि विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का प्रवेश ।)

ऋषि विश्वामित्र—अब तक मैंने तुम दोनों को ब्रह्माम्त्र संमत पूरे समरशाम्त्र में अवगत कर दिया है । कोई शंका तो शेष नहीं है ।

राम—मन्देह ! आपकी कृपा से कभी न था ।

ऋषि विश्वामित्र—था तो नहीं, किन्तु भरत के रुक जाने के कारण मैंने यह प्रश्न किया ।

लक्ष्मण—वे क्षण भर को भी रुकनेवाले न थे, न माता ही रोकतीं, किन्तु मन्यरा की सलाह में पड़कर उनका चित्त डायॉंडाल हो गया ।

राम—फिर भी उन्होंने रोका कब ? उनका केवल दुविधा देख कर पिताजी ने ही लक्ष्मण को भेज दिया । बेचारे भरत को न आ सकने का बड़ा दुःख हुआ ।

ऋषि विश्वामित्र—क्यों नहीं, आगिर क्षत्रिय-कुमार है; राजाओं के यहाँ नीचों की मान-वृद्धि से कभी कभी भारी गड़बड़ तक पड़ जाती है ।

राम—अच्छा, अब आगे क्या करना होगा ?

ऋषि विश्वामित्र—सम्भव है कि यहीं से कार्यारम्भ हो चले । मारीच और सुबाहु की बलवती माता यक्षिणी ताड़का मार्ग में कहीं भी मिल सकती है ।

लक्ष्मण—वह यत्न कन्या होकर ऐसी क्यों गिर गई कि राज्ञसों से भी बड़ी हुई है ?

ऋषि विश्वामित्र—कहते ही हैं कि

“को न कसंगति पाय नसाई ?

रहै न नीच मते गरुवाई ।”

राम—ऋषिवर ! क्या वह स्वयं भी युद्धोन्मुख होगी ? आगिर एक अबला से लड़ूँगा कैसे ?

ऋषि विश्वामित्र—बेटा ! वह अबला नहीं, महा प्रबला है । तुम लड़ना चाहो या नहीं, वह लड़े ही गी । ऋषियों तक पर प्रहार करना उसका नित्य का खेल है । जो शस्त्र उठाती है वह नारी कब रही ?

राम—फिर भी कोई आर्य किसी स्त्री से नहीं लड़ा होगा ।

ऋषि विश्वामित्र—यह क्या कहते हो ? विरोचन की कन्या दीर्घ-जिह्वा का संहार स्वयं इन्द्र ने किया, तथा शुकाचार्य की माता पर विष्णु भगवान् ने चक्र तक चलाया ।

लक्ष्मण—क्या उसका भी वध हो गया ?

ऋषि विश्वामित्र—जब चक्र ही चल गया, तब बचना कैसा ?

राम—जब ऐसी बातें हैं, तब किया ही क्या जाय ? यदि वह

पहले प्रहार करेगी, तो मैं भी कर दूँगा; आखिर आर्य-सभ्यता की रक्षा भी प्रधान कार्य है।

ऋषि विश्वामित्र—यही बात है; देखो पूर्व की ओर किस वेग से धूल उड़ रही है ? निश्चय है कि कुछ राज्ञियों के साथ ताड़का आ ही गई है ! (ताड़का का प्रवेश । ऋषि में)

ताड़का—अरे धोपिये ! आज इन लोकरों को क्या मेरे भोजनार्थ लाया है ?

ऋषि विश्वामित्र—यक्षिणी ! तेरे लिये ऐसे कथन शोभा नहीं देते । अपने माता पिता का स्मरण कर । पूरी राज्ञिनी न बन जा ।

ताड़का—अपना यह ज्ञान किसी दूसरे को जाकर सिखला । तुम्हीं लोग आर्य-सभ्यता की पुकारें कर कर के निशाचरों का राज्य नहीं फैलाने देते । अब सम्हल जाओ ।

राम—यक्षिणी ! स्त्री होकर युद्ध के लिये मन्नद्ध मत हो । गुरुवर ने तुम्हारे प्रतिकूल कोई कार्य नहीं किया है । मैं एक स्त्री पर प्रहार नहीं करना चाहता । जाओ, अपना गस्ता लो ।

ताड़का—अरे कल के लोकरे ! मुझसे बढ़-बढ़कर ऐसी बातें करता है । तेरे से सैकड़ों लुटों को मार-मारकर मैंने रसाईंघर में भेज दिया है । (राम पर प्रहार करता है । उसे बचाकर राम युद्ध करके तार्क्षण आणों में उमका विनाश करते हैं ।)

ऋषि विश्वामित्र—(राम को गले लगाकर) शाबाश बेटे ! तुमने मेरी शिक्षा को सफल कर दिया । अब चलो सिद्धाश्रम में अपना यज्ञारम्भ करूँ । वहाँ निशाचरी दल के साथ तुम्हें मारीच और सुबाहु से युद्ध करना होगा ।

राम—जो आज्ञा गुरुदेव !

तीसरा दृश्य

स्थान—जनकपुर, रम्भा अप्सरा का घर ।

(सम्राट रावण और रम्भा का प्रवेश)

रम्भा—अहोभाग्य कि आज देव का शुभागमन अनायास हो गया, किन्तु.....

रावण—भाग्य की सराहना और “किन्तु” भी !

रम्भा—मुझ पर देव की कृपा कर्मा और हुई नहीं थी ।

रावण—तुम्हारी गानविद्या की प्रशंसा सर्वत्र फैल रही है, अतएव मेरे आने में आश्चर्य की क्या बात है ? तुम्हारे “किन्तु” कहने का प्रयोजन कुछ और ही समझ पड़ता है ।

रम्भा—नहीं सम्राट् ! मेरे मुख से केवल आश्चर्यमूचक यह शब्द निकल गया । इन्हीं दिनों मारीच-मुवाहु के पराभव और भवदीय उत्तरी उपनिवेश के ध्वस्त होने से मैं आजकल देव को अप्सराओं के यहाँ देखने की आशा नहीं रखती थी ।

रावण—अब अप्सरा से तुम राजनीति की पंडिता होती हुई दिखती हो । ऐसे-ऐसे चार उपनिवेश मैं एक दिन में फिर स्थापित कर सकता हूँ । क्या इन लुप्त लड़ाइयों के कारण शिर पर हाथ रखकर रौने को बैठूँगा ? फिर तुम्हें इन बातों से क्या प्रयोजन ? सच कहों, मुझ पर अश्रद्धा तुमने क्यों प्रकट की ?

रम्भा—अपराध क्षमा हो राजसेन्द्र ! आज मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, क्योंकि आपके भतीजे नलकूवरजी गाना सुनने को पधारनेवाले हैं ।

रावण—पर वह मेरे सामने क्या वस्तु है ? यदि मेरे संह पर ऐसी भद्दी बातें करोगी, तो तुम्हारा कल्याण न होगा ।

रम्भा—मैं ऐसे-ऐसे बहुतेरों को देखे हुये बैठी हूँ, श्रीमान् ! मुझसे क्या बातें वधारी जाती हैं ? मेरे गुणों में वह बल है कि यदि गिनकर १०१ बातें सुनाऊँ, तो भी गुणत्र लोग चँ नहीं कर सकते, दीनबन्धु !

रावण—शायद इन्द्र के साथ तुम्हारा ऐमा ही व्यवहार रहता होगा ।

रम्भा—मेरे लिये सभी इन्द्र हैं ।

रावण—मुझे प्रसन्न करके तुम कैसा भी व्यवहार कर सकती हो, लेकिन “किन्तु,” “परन्तु” आदि द्वारा नहीं ।

रम्भा—तो आज के लिये मैं परवश हूँ । किसी और दिन प्रसन्नता से कृपा कर सकते हैं, अथवा मुझे ही बुला लें ।

रावण—मैं तो आज आया हूँ और इसी समय से तुम मुझे प्रसन्न करोगी, हँसकर या रोकर । अधिक बकबक करने से शेष जीवन लंका के कारागार में बिताओगी ।

रम्भा—जब ज़बरदस्ती की बात है, तब मैं भी विवश हूँ । अरी ओ कुरङलिनी ! (कुंडलिना का प्रवेश)

कुरङलिनी—आज्ञा स्वामिनी !

रम्भा—ज़ग नलक़्वरजी से कहला दे कि परवश होकर मैं आज उनकी सेवा कर सकने में असमर्थ हूँ ।

कुरङलिनी—जो आज्ञा ! (जाती है)

रावण—(चन्द्रहार उतारकर रम्भा को पहिनाता हुआ) तुम्हारी भलमंसी से अब मैं प्रसन्न हुआ ।

रम्भा—बड़ी कृपा अन्नदाता । यदि वचन न दे चुकी होती, तो मैं पहले ही राजसुराज के पधारने से अपने को कृत-कृत्य समझती ।

रावण—अच्छा, अब कोई बढ़िया गाना सुनाओ ।

रम्भा—जो आज्ञा । अरे उस्तादजी ! (पखावज आकर रावण का प्रणाम करके बैठता है । रम्भा पखावज तथा तानपूरा के सहारे गाती है ।)

सहे जा हिय आघात कराज ।

किसको मिला प्रेम का बदला, किसने किया निहाल ?

जिस पर तनमन करो निछावर वही दिखाता पीठ ।

दुरलभ यहाँ प्रेम की प्रतिमा मिलै स्वारथी ढीठ ॥

रावण—रम्भे ! महदाश्चर्य । इतनी छोटी अवस्था में तुम्हें इतनी निराशायें भोगनी पड़ी हैं ।

रम्भा—सम्राट् शिरोमणो ! मेरा क्यों, यह तो संसार का हाल है ।

रावण—फिर भी क्या ही अच्छा गाना सुनाया है । जैसा तुम्हारा रूप विश्वविमोहक है, वैसा ही गाना भी अनमोल है । कोई आश्चर्य नहीं कि इन्द्र के अखाड़े में तुम्हारा ऐसा मान है ।

रम्भा—बड़ी ही कृपा हुई सम्राट् । गुणग्राहकता इसी का नाम है ।

रावण—अच्छा, एक अन्य गाना भी सुनाओ ।

रम्भा—जो आज्ञा । (फिर गाती है)

अहो धनि जग-विजयी लंकेश ।

आरज सकल अनारज जीते रह्यो न रिपु को लेस ॥

धनद कुबेर जीति रन लीन्हो कीन्हो स्वबस सुरेश ।

राच्छस अरु बैसाल बंस की राखी लाज हमेश ॥

रावण—क्या कहना है ? भला मेरी प्रशंसा का गाना तुम्हें कैसे याद रहा ? क्या और स्थानों पर भी ये गाने सुने जाते हैं ?

रम्भा—ऐसे-ऐसे महापुरुषों की प्रशंसा के गाने याद न रखने से संसार में पूछै कौन ? आज सैकड़ों लोग इन्हें सुनते हैं, वरन् सच तो यह है कि इन्हीं की आज पूछ है ।

रावण—(मद्यपान करता हुआ) भला रम्भे ! तुमसे पूछता हूँ कि इन्द्रपुरी छोड़कर इन दिनों तुम जनकपुर में कैसे आ गई हो ? क्या सीरध्वज भी तुम लोगों का मान करते हैं ?

रम्भा—सो बात नहीं है देव ! किन्तु शैव पिनाक चढ़ाने के लिये इन दिनों यहाँ बहुतेरे राजा तथा राजकुमार आते हैं । आप भी चाहे उसी लिये पधारे हों ।

रावण—हाँ, ऐसी ही कुछ बात है । (बालक नरान्तक का प्रवेश)

नरान्तक—पिताजी ! खूब ही मिल गये । बड़ी देर से खोज में था ।

रावण—अबे तू यहाँ कहाँ आ गया : जा यहाँ से ।

नरान्तक—क्यों ? क्या यह कोई खराब जगह है ?

रावण—खराब नहीं क्या अच्छी है ?

नरान्तक—(रम्भा से) भद्रे ! क्या यहाँ आने में मैंने कोई अनुचित कार्य किया ? क्या यह सचमुच बुरा स्थान है ? देखने में तो अच्छा लगता है ।

रम्भा—बेटाजी ! आओ बेटो ! स्थान यह बहुत ही अच्छा है, किन्तु (रावण की ओर इंगित करके) ऐसे-ऐसों के आने-जाने में कदाचित् बिगड़ गया हो ।

नरान्तक—क्यों पिताजी ! यह क्या बात है ? (रम्भा से) पिताजी बहुत ही अच्छे हैं । इनके आने से कोई स्थान कैसे बिगड़ सकता है ? किसी और ने बिगाड़ा होगा ।

रावण—यही बात है बेटा । किन्तु तू यहाँ आया कैसे ?

नरान्तक—माताजी ने आपको बुलाने के लिये प्रतीहारी भेजा था । उसी के साथ उधर-उधर घूमते-घामते नलकृवर दादा मिल गये । उन्होंने से ज्ञात हुआ कि आप यहीं विराजे हैं । यह क्या सचमुच कोई बुरा स्थान है ?

रावण—(आप ही आप) अच्छा, यह दुष्ट नलकृवर का प्रपंच है ! बड़ा ही पाजी है । (प्रवृत्त से) बुरा हो या भला, तू जा यहाँ से ।

नरान्तक—बुरा है तो आप ही यहाँ क्यों पधारे हैं ? चलिये, माताजी बुला भी रही हैं ।

रावण—मुझे अनेक कारणों से सब कहीं आना-जाना पड़ता है । इन (रम्भा की ओर इंगित) के ऊपर मेरा कुछ ऋण आता है । उसी के तक्राजे को आया था ।

नरान्तक—तो किसी और को भेज देते । (रम्भा के गले में माला देखकर) अरे आप पिताजी की माला क्यों पहने हुये हैं ? यह आपने कहाँ पाई ?

रम्भा—बेटाजी ! यही इनकी बातें हैं । स्वयं मेरा रूपया चाहते थे । जब मैंने कड़ा तक्राजा किया तब उम्मी के बदले में माला मुझे दे दी । मैं भला किसी से क्या उधार लेती ? मेरे ही यहाँ क्या कमी थी ?

नरान्तक—पिताजी ! यह क्या बात है ? मेरी बुद्धि चक्कर खा रही है ।

रावण—अरे तू शिविर पर क्यों नहीं जाता ? यहाँ खड़ा-खड़ा क्या पंचायत कर रहा है ? बदमाश कहीं का !

नरान्तक—मैं रोने लगूँगा । मुझसे कभी आप ऐसी बातें नहीं करते थे । आज क्या हो गया है ?

रम्भा—आज इनकी अकल मारी गई है । जुये में दाम हारे, उस पर माला गई; अब बेचारे निर्दोष बच्चे को डाटते हैं ।

नरान्तक—(रावण के पास शराब का गिलास देकर) यह आप क्या पी रहे हैं ? मैं भी पीऊँगा, प्यास लगी है । (अभी बटकर गिलास उठाता है ।)

रावण—(गिलास छीनकर) अरे मूर्ख ! यह पानी नहीं, दवा है । तू क्यों पीवेगा ?

नरान्तक—क्या आप कुछ बीमार हैं ? मुबह तक तो अच्छे थे । क्या दुःख है; पिताजी ?

रम्भा—बेटाजी, मेरे यहाँ आकर इनका दिमाग सदा चक्कर खा जाता है । धन माँगने से अढ़ा नहीं करते और बीमार बनकर दवा पीने लगते हैं जिममें तक्राजा न करूँ ।

रावण—(हँसता हुआ) आपका मैं सदा ही ऋणी रहूँगा । एक माला पर क्या है ?

नरान्तक—कितना ऋण आपने इनका ले रक्खा है, जो लंका के कोप से भी नहीं चुक सकता ? आविर एक बार अढ़ा क्यों न कर दीजिये ?

रम्भा—अढ़ा कहाँ से करें, बेटाजी ! नित नये ऋण और लेते

फिरते हैं ? अभी आज ही ज़बरदस्ती माँगते थे । तुम्हारे सामने बड़े अच्छे बनते हैं; अभी सब करतूतें खोलकर रख दूँगी ।

नरान्तक—शुभे ! अब आप अनुचित कथन करती हैं । पिताजी कभी कोई बेजा काम नहीं कर सकते ।

रम्भा—ज़बरदस्ती किसी के यहाँ घुस आना और कहने से भी न जाना कैसे काम हैं ?

नरान्तक—बहुत बुरे । किन्तु पिताजी ने ऐसा कभी न किया होगा । आप इनका अपमान करती हैं ।

रम्भा—बेटा ! जो बात तुम्हें अपमान समझ पड़ती है उसी से तो तेरे पिता के से लोग गीलगीला और गद्गद हो जाते हैं ।

रावण—(नरान्तक से) तू यहाँ से चलता क्यों नहीं; मैं कितने बार कह चुका हूँ ? आग़िर कब मुनेगा ?

नरान्तक—तो चलिये; मैं स्वयं शीघ्रता में हूँ । अम्मा जी जल्दी करती थीं । चलिये न !

रावण—तू चल, मैं पीछे से आऊँगा ।

नरान्तक—नहीं साथ ही चलूँगा । अम्माजी ने अभी बुलाया है ।

रावण—बड़ा बदमाश है । जाता क्यों नहीं ?

नरान्तक—(रोते हुये) आप कभी ऐसा डाटते न थे । मैं अम्मा से कहूँगा कि आते नहीं और मुझी को डाटते हैं ।

रावण—अच्छा भाई चल, चलता हूँ । (रम्भा से) अब फिर कभी आऊँगा ।

रम्भा—जै जै सम्राट् ! अपराध क्षमा होते रहे ।

रावण—अपराध हैं कहाँ ?

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

स्थान—जनकपुर की एक अमराई—ग्राम का बाग

(महर्षि विश्वामित्र और लक्ष्मण का प्रवेश)

ऋषि विश्वामित्र—बेटा जी ! तुम्हारे भाई यहाँ प्रच्छन्न रूप से क्यों रहना चाहते हैं ? प्रकट होने में क्या संकोच है ? उनकी सम्मति के कारण अभी तक मैं महाराजा सीरध्वज जनक से मिला तक नहीं हूँ । सारी सेना भी अयोध्या जा चुकी है ।

लक्ष्मण—गुरुवर ! वे धनुष चढ़ाने को सन्नद्ध तो हैं और आपने इस विषय पर पूज्य पिता जी की सम्मति भी मँगा ली है, फिर भी अभी उनका मन दृढ़ नहीं है ।

ऋषि विश्वामित्र—यही मुझे भी समझ पड़ता है । क्या रावणादि तक के धनुष चढ़ा पाने में अस्माफल्य से उन्हें आत्मविश्वास की कुछ कमी ने आ घेरा है ?

लक्ष्मण—सो बात नहीं है, गुरुदेव ! हम लोग पहले ही से धनुष-विद्या में अभ्यासी रहे हैं । फिर आपने भी यह विद्या भली भाँति सिखला दी है । आत्मविश्वास की कमी अणुमात्र नहीं है ।

ऋषि विश्वामित्र—यही मैं भी समझता हूँ । फिर बात क्या है जो न तो प्रकट होना चाहते हैं न शौर्यवर्द्धन में ही उत्साह दिखला रहे हैं ?

लक्ष्मण—महात्मन् ! राजकुमारी जी कुल और मौन्दर्य में तो करोड़ों में एक हैं, फिर भी दादाजी इन्हीं दो बातों को सब कुछ नहीं मानते । वे शील-स्वभाव को भी बहुत कुछ समझते हैं ।

ऋषि विश्वामित्र—ऐसा ! तब मुझसे क्यों न कहा ?

लक्ष्मण—संकोच इसमें बाधक था, गुरुदेव ! अभी तक कोई युक्ति भी समझ में नहीं आई है ।

ऋषि विश्वामित्र—गुरु और पिता से संकोच क्या करना ? मैं समझता हूँ कि छद्म वेश में राजकुमारियों को अपना कोई गुण

दिखलावें और इसी सम्बन्ध की बातों में चरित्रवल की भी परीक्षा कर लें ।

लक्ष्मण—यह तो सोच चुके हैं, किन्तु किसी कुलवती राजकन्या से इस प्रकार लुब्ध वेश में मिलना क्या सम्भव अथवा योग्य है ?

ऋषि विश्वामित्र—इसका भी प्रबन्ध तथा परिहार हो जायगा ।

लक्ष्मण—एक बात और शेष है, गुरुदेव ?

ऋषि विश्वामित्र—पूछो ।

लक्ष्मण—मला यह अहल्या हैं कौन, जिन्हें मार्ग में आपने दादा जी के द्वारा पुनीत करवाया ?

ऋषि विश्वामित्र—बेटा जी ! यह पांचाल सम्राट् सुदाम की बुवा हैं और शत्रुघ्न गौतम के साथ इनका विवाह हुआ था । राजा जनक के पुरोहित शतानन्द इन्हीं अहल्या के पुत्र हैं ।

लक्ष्मण—इन्द्र ने तो धोखे में डालकर इनको लुटा था : फिर गौतम ऋषि ने इन्हें शाप क्यों दिया ?

ऋषि विश्वामित्र—इन्द्र ने गौतम का रूप अवश्य रक्खा था, किन्तु अहल्या को इसका भेद ज्ञात पहले ही हो गया था ।

लक्ष्मण—इसीलिये बेचारी को सब आदर खोकर पति के आश्रम में चिरकाल गुप्त रूप से रहना पड़ा ।

ऋषि विश्वामित्र—और क्या ? उन्हें अपने शरीर को पापाण के समान इन्द्रिय ज्ञान शून्य-मा रखना पड़ा था ।

लक्ष्मण—आपने बड़ी ही कृपा की जो उनका उद्धार कर दिया ।

ऋषि विश्वामित्र—उत्तर पांचाल घराने से तुम्हारे घर का जैसा सद्व्यवहार रहा आया था, उस विचार से भी राम के द्वारा उनका पवित्र होना ठीक था । इनके मानने से सभी ने उनको पुनीत मान भी लिया ।

लक्ष्मण—दंड भी बेचारी को काफ़ी मिल चुका था ।

(दोनों का प्रस्थान । पटोत्तोलन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—जनकपुर का शस्त्रागार ।

(महाराजा जनक, महारानीजी, सातर्जा, उर्मिला, तथा दो सन्धियां बैठे हैं । कुछ सेवक खड़े हैं ।)

महाराजी—क्या कहें, शैव-पिनाक कोई उठा ही नहीं पाता: अब क्या होगा ?

जनक—मैं भी बड़ी चिन्ता में हूँ । यदि सम्भूता कि यह काहे ऐसा अशक्य है, तो पुत्री के विवाह का यह प्रण ही क्यों करता ?

महाराजी—प्रण आपने धनुष चढ़ानेवाले को कन्या देने का किया था, कुल यह कहा ही न था कि किसी के भी ऐसा न कर पाने पर पुत्री का विवाह ही न होगा ।

जनक—यह ठीक है, किन्तु जो राजकुमार एक बार विफल होकर वापस जा चुके हैं, उन्हीं में से किसी को कन्या दूँगा कैसे ? मुझे ग्लानि लगेगी, और वर से भी लज्जा के कारण मुँह न उठाया जायगा ।

उर्मिला—जिस ब्रह्मा ने दीदी जी को ऐसे रूप और गुण दिये हैं, उसने क्या योग्य वर न रच रखवा होगा ?

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जैजै महाराज ! कोशल के दोनों मंडलाधिप बाहर प्रस्तुत हैं ।

जनक—(महारानी से) क्या बुलाऊँ ? मेरे पास समय थोड़ा है ।

महाराजी—कार्य मुझे भी है । क्या हुआ, कुछ काम आप और हम भी देखेंगी, और शेष बेटियाँ देख लेंगी ।

जनक—अच्छी बात है । (प्रतीहारी से) बुलाओ दोनों को । दो आसन रखवा दो । सुनते हैं ये कुमार सुकुलोद्भव होने से अपने मान का बड़ा ध्यान रखते हैं । (दो आसन रखे जाते हैं । प्रतीहारी का प्रस्थान । गम-लक्ष्मण का लक्ष्म वेश में प्रवेश । दोनों महाराजा तथा महारानी को प्रणाम करते हैं ।)

जनक—आओ बेटा ! यहाँ बैठो । (दोनों आसनों पर बैठते हैं ।)

महारानी—(राम से) बेटा ! तुम क्या काम जानते हो ?

राम—देवि ! शस्त्रास्त्र सम्बन्धी कई काम गुरु ने सिखलाये थे । जानता क्या हूँ; आप मरीखे महात्माओं की कृपा से मनोरंजन का प्रयत्न करता हूँ ।

महारानी—अच्छा, प्रारम्भ कीजिये ।

राम—धनुष बाण से प्रारम्भ करता हूँ ।

जनक—बहुत अच्छा । (रामचन्द्र धनुष-बाण के कई अच्छे काम दिखलाते हैं ।)

जनक—शाबाश बेटा ! तुम बड़े गुणी हो । (पास बोलाकर मणिमाल गले से उतारकर देने का सन्नद्ध होंते हुए) लो मैं यह माल केवल प्रसन्नता के उपलक्ष में भेंट करता हूँ । तुम्हारा पूरा पारितोषिक पीछे से मिलेगा ही ।

राम—(हाथ जोड़कर) देव ! बड़ी कृपा हुई जो मेरी तुच्छ विद्या आपको पसन्द आई, किन्तु भेंट और पुरस्कार के लिये मैं कोई काम नहीं दिखलाता ।

महारानी—महदाश्चर्य ! बेटा फिर तुम काम दिखलाते ही क्यों हो ? इतना परिश्रम आगिर क्यों करते हो ?

राम—मैं भारतवर्ष में शस्त्रास्त्र का ज्ञान फैलाना चाहता हूँ । यही मेरा पुरस्कार है ।

मीताजी—आगिर आपकी गुज़र कैसे होती है ?

राम—दो ही भाई ठहरे; खाने भर को जागीर राज्य ने ही लगा रखी है । अमीर तो हैं नहीं, किन्तु भूखे भी नहीं रहते । दिन के आठवें पहर तक ईश्वर कुछ दे ही देता है ।

जनक—कहा भी है—

दिवसस्याष्टमे भागे शाकम्पचति यद् गृहे ।

अन्नदानी चाप्रवासी च स वारि चर मोदते ॥

उर्मिला—समझ पड़ता है आप दोनों भाई हैं प्रसन्न ।

लक्ष्मण—गरीबी में भी अमीरी का स्वाद मानसिक शिक्षा से प्राप्त हो सकता है, देवि ! कोई मालमस्त, कोई हालमस्त ।

जनक—बेटाजी ! कहना तुम्हारा है ठीक, किन्तु भेंट-स्वीकार द्वारा मेरा चित्त भी तुम्हें प्रसन्न करना चाहिये ।

राम—प्रसन्नता देव को निर्लोभ से क्या न होगी ? मैं भेंट सर आँखों पर स्वीकार करता हूँ, किन्तु किसी शुद्ध क्षत्रिय के लिये नटों के-से काम से कमाई क्या शोभा देती है ?

जनक—हम लोग आपके काम से जितना प्रसन्न हुये, उससे अधिक उच्चादर्श प्रदर्शन से । अच्छा, आज कार्यवश हम लोग जाते हैं । अब बेटियों को शेष काम दिखलाइये । किसी दिन फिर कृपा करना ।

राम—जो आज्ञा । (महाराज और महारानी का प्रस्थान) । (राज-कमारियों से) अब आप दोनों महाशया और क्या देखना चाहती हैं ?

उर्मिला—जो दिखलाना चाहिये । खड्ग ही का प्रयोग सही ।

राम—जो आज्ञा । (खड्ग और भाले के कई काम दिखलाते हैं) ।

मीताजी—धन्य राजकुमार, धन्य । तुम्हारी जननी तुमसे वास्तव में पुत्रवती हुई । अब कृपया आसन पर विराजिये । (राम बैठते हैं) ।

राम—कहिये अब क्या इच्छा है ?

मीताजी—मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप इधर कैसे पधारे हैं ?

राम—कुछ देशाटन के विचार से आया हूँ ।

लक्ष्मण—प्रयोजन यह है कि यत्र-तत्र घूमकर उच्च शस्त्र-विद्या का ज्ञान और कई नवीन प्रयोगों का प्रचार देश में बढ़ाया जाय ।

पहली सखी—धनुष-विद्या में आप पारंगत समझ पड़ते हैं । क्या श्रीमान् मिथिलेश का प्रण आपने नहीं सुना है ?

राम—सुना क्यों नहीं; किन्तु क्षमा करें, उससे मुझे स्त्री-समाज का कुछ अपमान-सा समझ पड़ता है ।

दूसरी सखी—यह कैसे ? माना कि किसी के भी धनुष चढ़ा लेने से उससे यकायक प्रेम नहीं बढ़ सकता, फिर भी वीर पुरुष प्रीति योग्य हो सकते हैं ।

राम—चाहे वे महानिर्धन और चरित्रहीन भी हों ।

पहली सखी—ऐसे वीर और गुणी पुरुष धनोपार्जन भी कर सकते हैं । वे सदैव निर्धन न रहेंगे । वीर पुरुष प्रायः चरित्रवान होते भी हैं ।

राम—और यदि परशुराम की भाँति धन लेना चाहें ही नहीं ?

दूसरी सखी—तब उन्हीं की भाँति शायद ब्रह्मचारी भी रहेंगे । ऐसे लोग विवाहार्थ सन्नद्ध ही क्यों होने लगे ?

राम—यदि स्वल्प धन के स्वामी होने से उच्चादर्शों के कारण विशेष धनोपार्जन न करें, किन्तु ब्रह्मचारी भी न रहना चाहें, तो ?

पहली सखी—प्रत्येक युवती शायद ऐसे स्वामी को पसन्द न कर सके, किन्तु यह कैसे समझा जा सकता है कि कोई भी स्त्री उच्चादर्शपूर्ण न होगी ?

राम—फिर भी सब तो ऐसी नहीं होतीं ।

दूसरी सखी—क्या हमारे महाराज का प्रण साधारण स्त्रियों के लिये है ?

राम—भृष्टता क्षमा हो; क्या उन्होंने राजकुमारीजी से पूछकर ऐसा प्रण किया था ?

उर्मिला—क्या कोई पिता अपनी कन्या को पहचानता नहीं ?

राम—अच्छा, मैं साफ़ कहता हूँ कि पिनाक का चढ़ाना गुरु की कृपा से मेरे लिये कदाचित् दुस्तर न हो, किन्तु दरिद्रता का खंडन न करूँगा । प्रणानुसार मुझे अधिकार प्राप्त ही है, किन्तु स्वार्थी नहीं बनूँगा ।

पहली सखी—क्या आपके पास जागीर बहुत थोड़ी है ?

राम—दो-चार मनुष्यों ही के लिये बहुत है, अधिक के लिये नहीं । विशेष आवश्यकता भी नहीं है ।

उर्मिला—और आप अपनी विद्या से लाभ उठाकर उस बढ़ा-
येंगे नहीं।

राम—विद्या संसार की उन्नति के अर्थ मीखी है, स्वार्थ के लिये
नहीं।

उर्मिला—यदि हमारे पूज्य पिताजी आपकी भेट कोई प्रान्त करना
चाहें, तो ?

लक्ष्मण—हम हैं क्षत्रिय-कुमार, न कि ब्राह्मण।

राम—प्रतिग्रह लेना क्षात्रधर्म नहीं।

दूसरी सखी—धनुष चढ़ाने में भी इनाम लेने का सा मामला है।

राम—इसीलिये चढ़ाता नहीं। केवल राजाज्ञा से कन्या के लिये
यत्नवान होना मेरा काम नहीं।

उर्मिला—कन्या व्यक्ति ठहरी, सम्पत्ति नहीं।

राम—यही बात है। फिर राजाज्ञा पालकर कोई इनाम भी मैं नहीं
लेता। क्या भिन्नक हूँ जो पुरस्कार या प्रतिग्रह के लिये हाथ बढ़ाऊँ ?

मीताजी—बड़े ही उच्चाभिलाषी व्यक्ति समझ पड़ते हैं।

पहली सखी—किन्तु पैर पृथ्वी से दस हाथ ऊपर ही रहते-से हैं।

राम—क्या चरित्रबल के लिये आदर्शवाद आवश्यक नहीं ?

उर्मिला—जब आप इतना ऊँचा चरित्र रखना चाहते हैं, तब
दूसरे पक्ष में भी शायद स्वार्थ की दुर्गन्ध निकले।

राम—फिर भी कहाँ भारी राजपद और कहाँ एक साधारणी
जागीर।

उर्मिला—दीजीजी ! धनुष चढ़ाने के सम्बन्ध में रावण, बाण,
दक्षिण पांचाल नरेश रुचिराश्व, उत्तर पांचालपति सोमक, मागध
युवराज मुहोत्र, दक्षिण कोशलपति आदि अनेक महापुरुष आये,
किन्तु ऐसे ऊँचे सिद्धान्त किसी के न देख पड़े।

लक्ष्मण—काशी के युवराज अलर्क, मथुरा के सत्वन्त, हस्तिनापुर
के कुरु, हैहयनरेश दुर्जय और अंग के चतुरंग भी आये होंगे।

दूसरी सखी—जी हाँ, द्रुह्युवंशी तथा कई आनव राजकुमार आदि भी पधारे थे ।

पहली सखी—इनके अतिरिक्त बर्चिन, भेदादि अनायों के कुमार तथा कई वैकर्ण भी आये ।

राम—इसीलिए धनुष-कर्षण में अभी तक प्रवृत्त नहीं हुआ हूँ । ऐसी भीड़ में चरित्र-चिन्तन का प्रसंग ही क्या होगा ?

दूसरी सखी—क्या धनुष चढ़ाना आपको बहुत ही साधारण दिखता है ?

लक्ष्मण—ऐसा कहना अहंकार की बात होगी ।

राम—ऐसा ही है ।

पहली सखी—किन्तु है क्या मुगम ?

राम—है तो दुर्गम, किन्तु जो काम कोई मनुष्य कर सकता है उसके लिये दूसरा भी हिम्मत बाँध सकता है ।

पहली सखी—तो कोई आपका उत्साह भंग करने के लिये कैसे मन्त्रद्ध हो सकता है ?

राम—सखीजी ! जहाँ दो व्यक्तियों के मुख का प्रश्न हो, वहाँ केवल एक का उत्साह करना स्वार्थपरता समझ पड़ती है ।

दूसरी सखी—जिसके इतने ऊँचे आदर्श हों, उसके साथ किसी को कष्ट मिलना—असम्भव !

राम—ऐसी गुणग्राहकता के लिये अनेक धन्यवाद ।

लक्ष्मण—यदि आज्ञा हो तो हम लोग अब बिदा माँगें ।

दूसरी सखी—क्या आप कोई काम न दिखलायेंगे ?

लक्ष्मण—यह इन्हीं को शोभा देता है कि नटों के समान कला-वाजी दिखलाते फिरें ।

उर्मिला—कलावाजी उन्होंने कब दिखलाई ? जो काम उन्हें अवगत है उनसे किसी को भी गर्व हो सकता है ।

राम—काम तो हम दोनों को प्रायः समान रूप से अभ्यस्त हैं ।

उन पर इन्हें भी गर्व है किन्तु उनकी परीक्षा देने मात्र में अश्रद्धा है।

पहली सखी—यदि आप भी इनकी अश्रद्धा को योग्य मानते हैं, तब स्वयं ऐसे कार्य में क्यों प्रवृत्त हुए ?

राम—यदि न हूँ तो संसार में समर शास्त्र की वृद्धि का अवसर कैसे मिले ?

उर्मिला—(लक्ष्मण से) क्या आपको संसार में कलावृद्धि का इतना चोप नहीं है ?

लक्ष्मण—है सब कुछ, किन्तु उसी बात के दोहराने से क्या लाभ ?

राम—अब आपका अधिक समय नष्ट करना शायद ठीक न हो।

उर्मिला—उचित है; माताजी भी बाट जोहती होंगी।

(पटाक्षेप)

छठवाँ दृश्य

स्थान—जनपद में रावण का महल।

(रावण, माल्यवन्त, खर और मारीच का प्रवेश।)

रावण—नानाजी ! भाई मारीच की कष्ट कथा आपने सुन ही ली। बेचारों की माता तथा भाई सुबाहु दोनों का वध राम के हाथ से हो गया।

माल्यवन्त—बड़े दुःख की बातें हैं; कामवन का उपनिवेश भी अपने हाथ से निकल ही गया। समझ पड़ता है कि अयोध्या में कोई नवीन शक्ति फिर से बल पकड़ रही है।

खर—नवीन क्यों, नानाजी ! अयोध्या तो प्राचीन शक्ति है। उत्तरी भारत में आर्यों की परम प्राचीन शक्तियाँ अयोध्या और उत्तर पांचाल ही थीं।

रावण—इन्हीं दोनों ने मिलकर बेचारे तिमिध्वज शम्बर का ब्रैज-यन्त राज्य ही नष्ट कर दिया, जिस विजय की वेद तक में भूरि-भूरि प्रशंसा हुई।

मारीच—उस काल शम्बरजी की सहायता न करने में अपनी ओर से भारी भूल हुई। यदि वह शक्ति स्थापित रहती, तो आज उत्तर पांचाल के गिर जाने पर भी अयोध्या को इतनी हिम्मत न पड़ती।

रावण—क्या कहूँ मित्र मारीच ! इधर मुबाहु के निधन से भी चित्त पर भारी धक्का पहुँचा है।

खर—हुई सचमुच असह्य वेदना !

मारीच—अब उस उपनिवेश के फिर स्थापित करने के विषय में क्या विचार है ? प्रयत्न होना ही चाहिये।

माल्यवन्त—मैं समझता हूँ कि लंका और जनपद से इतनी दूर कामवन में उपनिवेश स्थापित हो भी जाने से वह चिरस्थायी न होगा। यह प्रारम्भ ही बहुत योग्य न था।

खर—आप पहले भी यह बात पसन्द न करते थे, यह तो मारीच दादा ने धाँगा-धाँगी से स्थापित कर दिया था।

मारीच—अब मेरे लिये क्या आज्ञा होती है ?

रावण—मैं समझता हूँ, नानाजी ! कि इन्हें भी समुद्र-तट पर जनपद ही की शक्ति-वृद्धि में लगा दिया जाय।

माल्यवन्त—यही ठीक होगा।

मारीच—क्या आर्यों का बल ऐसा बढ़ता हुआ दिखता है कि अपने को वृद्धि के स्थान पर स्थिरीकरण मात्र पर ध्यान देना होगा ?

रावण—ऐसी मरी बात मुख से क्यों कही जाय ? अभी ऐसा ही हो, फिर आगे-पीछे जब जैसा डौल देख पड़ेगा, वैसा किया ही जायगा।

माल्यवन्त—बहुत योग्य है देव ! बैजयन्त राज्य के गिर जाने तथा वर्चिन और भेद के पस्त होने से अब केवल अपनी शक्ति शेष रह गई है।

खर—यही बात है। वह तो कहिये कि मुदास की अहंकारपूर्ण मूर्खता तथा आर्यों की गृहकलह से उत्तर पांचाल राज्य ध्वस्त हो गया,

नहीं तो अब तक हम लोगों के सामने भी आत्मरक्षा के प्रश्न आ जाते ।

माल्यवन्त—(रावण से) बेटाजी ! इन्द्रियलिप्सा के कुछ भी सीमा के बाहर निकल जाने से कभी कभी असह्य हानि की भी सम्भावना रहती है । यदि मायावती का बखेड़ा न उठता, तो क्यों वैजयन्त राज्य टूटता और क्यों हम अपने को अकेला पाते ?

रावण—नानाजी ! इस विषय पर संसार को बड़ा भारी धोखा हुआ है । भला क्या दुनिया की सभी सुन्दरियाँ मर गई थीं जो मैं स्वयं साम्राज्ञी की बहन तथा युवराज की मौसी पर अनुचित निगाह उठाता ?

माल्यवन्त—कह आज दुनिया यही रही है ।

रावण—दुनिया होती है अन्धी; जब स्वयं तिमिध्वज ने मुझ अतिथि को कारागार में बन्द ही कर दिया और महात्मामय दानव के बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर जाकर छोड़ा, तब संसार ऐसा सोचेंगा क्यों नहीं ?

खर—उन्होंने तो स्वयं मायारानी की शिकायत पर ऐसा किया था ।

रावण—वह मूर्खा साधारण हँसी ठट्टा को प्रणय-निवेदन समझ बैठी थी ।

मारीच—फल भी हाथोहाथ पाया, कि राज्य और पति दोनों खोये ।

माल्यवन्त—ऐसी दशा में युद्ध के समय उनकी सहायता क्यों न की गई ?

रावण—इतनी ही भूल मैंने क्रोधान्ध होके कर डाली । उस समय कारागार की ग्लानि ने मुझे ऐसा घेरा था कि सहायता की ओर चित्त ही न गया ।

खर—नानाजी ! द्राविड़ों का आर्थों से यह युद्ध कब से चला आता है ?

माल्यवन्त—बेटा ! यह परम प्राचीन कथा है । पहले उत्तरी देश

में कोलों का प्राधान्य था और दक्षिणी भारत तथा बलूचिस्तान में द्राविड़ों का । कोलों को जीतकर हम लोगों ने अपनी महत्ता फैलाई ।

मारीच—फिर आर्यों का यह पचड़ा कब से चला ?

माल्यवन्त—स्वारोचिष मन्वन्तर से । पहले महिषासुर तथा शुम्भ निशुम्भ का पतन अम्बिका से लड़कर हुआ ।

रावण—मधु कैटभ का युद्ध तो इससे भी पुराना था ।

माल्यवन्त—था ऐसा ही, किन्तु शायद ऐतिहासिक न था । यदि हो भी तो निश्चयपूर्वक भारत से सम्बद्ध नहीं सिद्ध होता ।

रावण—हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, बलि आदि के सुरों से युद्ध आर्यों के आपसी झगड़े थे, क्योंकि दैत्य, दानव तथा देवगण सब थे आर्य ही !

माल्यवन्त—सोई बात ही थी । जब देवताओं के हारने पर विष्णु द्वारा सन्धि के अनुसार दैत्य-दानवों का सुरों से झगड़ा शान्त हुआ, तब वहाँ से हटकर देवराज इन्द्रालय में जा बसे और इधर पारस में दैत्येश प्रह्लाद इन्द्र बने ।

खर—इससे पूर्व भी शायद आर्य भारत आ चुके थे ।

माल्यवन्त—अवश्य । स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चानुष मन्वन्तरों में आर्यों की पहली धारा यहीं वर्तमान थी, किन्तु उसमें विशेष बल न था और हम लोगों के उनसे भारत में भारी युद्ध न हुए ।

रावण—वृत्र वासव युद्ध शायद भारत से बाहर का हो ।

माल्यवन्त—वैदिक ऋचाओं के अध्ययन से वह काल्पनिक अथवा दार्ष्टान्तिक भी समझ पड़ता है । जब से वैवस्वत मनु और बुध भारत में आये, तभी से आर्यों के असली युद्ध द्राविड़ों से प्रारम्भ हुये ।

खर—पुण्यजन राज्ञसों ने शार्यात वंश से आनर्त देश छीन ही लिया था ।

रावण—महात्मा धुन्ध का धुन्धमार द्वारा विनाश पहली भारी द्राविड़ हार थी ।

माल्यवन्त—वास्तव में दक्षिणी भारत हमारा है। अभी तक आगे बढ़कर वर्चिन, भेद आदि ने मध्य और उत्तरी भाग में प्रभाव फैलाया था।

खर—वशिष्ठ और तालजंघ के सैनिक प्रताप भी म्लेच्छ बल पर आधारित थे।

माल्यवन्त—सो हुई है। अभी तक अपनी कोई वास्तविक हेयता दक्षिण में नहीं हुई है।

मारीच—लंका को कुवेर ने जीता अवश्य किन्तु हमारे सम्राट् के पुरुषार्थ से अपना बल फिर से स्थापित हो गया है।

माल्यवन्त—स्थापित ही क्यों, विश्वविजय द्वारा बढ़ भी गया है। भारत से बाहर भी निकलकर हम लोगों ने इन्द्रादि तक को पराजित किया है।

रावण—प्रकट है। शम्बर हारे अवश्य, किन्तु उनका राज्य आर्यों ने न पाया, वरन् वह हमारे जनपद के उपनिवेश में सन्निविष्ट है।

खर—उनकी पराजय एक दुःस्वप्नमात्र-सी थी। फिर भी वर्चिन और भेद के राज्य निकल गये हैं और काशी जो क्षेमक द्वारा प्राप्त की गई थी, वह भी जाती रही।

माल्यवन्त—हैहयराज्य में आधा-पधा प्रभाव अपना ही था, किन्तु उन भूपालों ने सारे उत्तरी नरेशों को शत्रु बना लिया, जिससे परशुराम, अग्निश्रौर्व, भरद्वाज और प्रतर्दन के उद्योगों से वह विशाल राज्य प्रियमाण-सा हो रहा है।

रावण—इन्हीं सब बातों से अब सारा बोझ अपने ही ऊपर देख पड़ता है। फिर भी दक्षिण में हम लोग दबनेवाले नहीं हैं।

माल्यवन्त—यहाँ आर्यों में प्रथमतः परशुराम महेन्द्रपर्वत पर बसे, किन्तु तपस्वी के रूप में, न कि शासक बनकर।

रावण—वास्तव में पहलेपहल दण्डकारण्य पार करके मानपुत्र मान्दार्य वीरवर अगस्त्य ऋषि इधर आ बसे, और उनके प्रभाव से

एक आर्य उपनिवेश मानो अपने हृदय पर स्थापित हो गया है।

माल्यवन्त—यही बात है। बेचारे आतापी और वातापी का विनाश अगस्त्य द्वारा हो गया।

रावण—फिर बलवती जलसेना बनाकर उन्होंने वनायु (अरब) के लुटेरों से भारतीय समुद्री व्यापार सुरक्षित कर दिया।

खर—इससे तो लाभ हम लोगों का भी है।

रावण—है सही, किन्तु महत्ता दक्षिण में भी आर्यों की जमी। लोग कहते ही हैं कि अगस्त्य ने मानो समुद्र पी लिया।

मारीच—समुद्री युद्ध से इतर कोई महत्ता उनकी दक्षिण में भी नहीं जमने पाई है।

खर—जमती कहाँ से; यहाँ हम लोगों की थलसेना का सामना करना क्या दालभात का कौर था ?

रावण—किन्तु नानाजी ! क्या यह जलशक्ति थलदल में परिणत नहीं हो सकती ?

माल्यवन्त—हो क्यों नहीं सकती, किन्तु है दुःसाध्य। अभी तक इसका प्रयत्न भी नहीं हुआ है।

रावण—देखने में अगस्त्य के बल का प्रभाव दक्षिण में समाप्तप्राय है।

खर—हमारे निशाचरों के उपद्रवों से अपना प्राण ही बचा लेना वे लोग परम पुरुषार्थ समझते हैं। आशा है कि दस-बीस वर्षों में दण्डक की भौंति यह उपनिवेश भी मिट जायगा।

रावण—इसीलिये मेरा भी विचार है कि उत्तरी भारत में प्रयत्न करने के स्थान पर इसी आर्य उपनिवेश का ध्वंसन एक सुकर अथच यशवर्द्धक कार्य होगा। क्यों न नानाजी ?

माल्यवन्त—समझ मुझे भी ऐसा ही पड़ता है।

मारीच—सुना गया है कि राम ने मिथिला में शैव धनुष अजगू को चढ़ाकर उस पर इस जोर से बाण ताना कि वह पिनाक चरचराकर टूट ही गया।

खर—अब सीता के विवाह से मैथिल शक्ति भी शायद अयोध्या की सहायक हो जाय ।

माल्यवन्त—ऐसा तो मुझे समझ नहीं पड़ता ; राजा सीरध्वज वैद्यक में इतना मन लगा रहे हैं कि मैत्र्य बल की ओर अब उनका तादृश ध्यान ही नहीं ।

रावण—मैं समझता हूँ कि परशुराम को यह संवाद सुनाया जाय । सम्भवतः राम उन्हीं की कोपाग्नि में स्वाहा हो जाय और उत्तर पांचाल की भाँति अयोध्या की भी शक्ति गिर जाय । कंटकेनैव कंटकम् का मामला होगा ।

माल्यवन्त—प्रयत्न अवश्य करना चाहिये, यद्यपि मुझे आशा कम है ।

रावण—विश्वामित्र राम के सहायक तथा परशुधर के स्वजन हैं । इसी से शायद आप ऐसा सोचते होंगे ।

माल्यवन्त—यह तो हर्ष है । फिर भी प्रयत्न में क्या हानि है ?

(सबका प्रस्थान—पटोत्तोलन)

सातवाँ दृश्य

स्थान—जनकपुर ; पटभवन । राम का वैवाहिक दरबार ।

(वर पक्ष में चारों भाइयों के अतिरिक्त सम्राट् दशरथ, वशिष्ठ, विश्वामित्र, सुमन्त आदि बैठे हैं ।)

(प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जै जै देव ! मैथिल जनाती लोग निमन्त्रण देने को बाहर प्रस्तुत हैं ।

ऋषि वशिष्ठ—उन्हें सादर बुलावो । (प्रतीहारी का प्रस्थान । मैथिलों का प्रवेश । अयोध्या वाले अभ्युत्थान देकर उन्हें सादर बिठाते हैं ।)

शतानन्द—(भानुमन्त से) राजकुमार अब वर का पूजन कीजिये ।

भानुमन्त—जो आज्ञा । (शतानन्द की सहायता से राम का पूजन करते हैं ।)

शतानन्द—वैवस्वत मनु परम पूज्य भारत मैं गायो ।

मन्वन्तर यह जासु नाम पर जगत चलायो ॥

ध्वस्त प्रबल अरि किये आर्य बल जग में थाप्यो ।

जाके रन सों शत्रुबर्ग कादर बनि काँप्यो ॥

दृढ़ करि थाप्यो निज बंस हित प्रबल अयोध्या राज्य बर ।

पुनि भेजि सकल दिसि सुवनगन कीन्हो सब भारत सुघर ॥ १ ॥

ताको सुत इच्छाकु भयो अति प्रबल प्रतापी ।

जाके जस की ध्वजा देस देसन में व्यापी ॥

उपनिवेश अति चारु बिपिन दंडक में रोप्यो ।

भेजि बन्धु शरयाति कच्छ को बिक्रम लोप्यो ॥

पुनि कियो अयोध्या अति सुघर करि थापित जनपद महा ।

सित सुजस भूप इच्छाकु को पूरि देस देसन रहा ॥ २ ॥

तासु बंसधर भयो पुरंजय नृप बलवाना ।

लही ककुस्थ उपाधि इन्द्र को करि सनमाना ॥

धुन्धमार पुनि भयो अयोध्याधिप अति भारी ।

जेहि लहि रन मैं बिजै बंस कीरति बिस्तारी ॥

पुनि बिस्वगस्व हैदल रच्यो जो रन सों कबहु न मुरयो ।

तेहि पलक माहि मरदित कियो जौन सत्रु सनमुख जुरयो ॥ ३ ॥

मानधाता नरनाह भयो रबिकुल उजियारो ।

लै सेना दस लाख सकल सत्रुन संहारा ॥

सात दीप नवखण्ड जीति सब निज बस कीन्हो ।

लै समराट उपाधि देस में जस भरि दीन्हा ॥

असदस्यु भयो पुनि भूपवर वेदहु में जेहि जस लब्धो ।

मुचकुन्दहु रघु को देखि बल सकल भुवन धनि धनि कह्यो ॥ ४ ॥

भानुमंत—भे दशरथ महिपाल आपु तेहि कुल उजियारे ।

अश्वमेध करि देह दान जस जग बिस्तारे ॥

दिवोदास करि मीत तिमिध्वज शम्बर मारयो ।

करि भारत दिगबिजै सेत जस बिसद पसारयो ॥

पुनि रामचन्द्र सो सुत लह्यां चौदह भुवन उजास कर ।

जो हनि ताड़का सुबाहु भो ऋषिपतिनी अघ नास कर ॥ ५ ॥

शतानन्द—अब धन्य धन्य मैथिल भये लहि ऐसो सम्बन्ध बर ।

मुनिगन समेत जेवनार हित चलि कीजिये पवित्र घर ॥ ६ ॥

वशिष्ठ—रबि बंसिन मैं अति पुनीत निमिकुल नितगायो ।

माथब कुल दौहित्र होय जेहि सुजस कमायो ॥

नैनन के सब रोग भूप निमि दूरि दुरायो ।

करि मिथिला सम्पन्न बहुरि मिथि जस बगरायो ॥

सीरध्वज अरु कुशध्वज करैं जौन बंस उजियार अब ।

लहि तिन को यह सम्बन्ध सुभ भे हम अति कृतकृत्य सब ॥ ७ ॥

दशरथ—हमारे गुरुदेव का कथन अक्षरशः सत्य है । मैं ऋषिवर विश्वामित्र का सदैव ऋणी रहूँगा कि जिन्होंने विजय दिलाकर न केवल साम्राज्य का मनस्ताप दूर किया, वरन् जगत्प्रसिद्ध मैथिल वंश से सम्बन्ध जोड़कर हम लोगों को और भी कृतकार्य कर दिया है ।

ऋषि विश्वामित्र—सम्राट् प्रवर ! यह आपकी महत्ता है कि मेरे इन लुद्र कार्यों को इतना मान देते हैं ।

सुमन्त—अब यदि शतानन्द आदि ऋषियों को आपत्ति न हो, तो किसी मंगलामुखी का कुछ गान भी हो जाय ।

शतानन्द—है तो यह बात गुरुवर वशिष्ठादि के सामने कुछ अयोग्य, किन्तु समय को देखते हुये ठीक ही है ।

सुमन्त—(एक प्रतीहारी से) अजी सावित्री गायिका को बोलाओ कि कुछ मंगलगान भी हो जाय ।

प्रतीहारी—जो आज्ञा । (बाहर जाकर गायिका सहित पुनरागमन ।)

गायिका (साजिन्दों के वाद्य सहित नाचती गाती हुई)—

जुग जुग जियो राम सिध जोरी ।

सूर सिंगमनि रूप रासि जिमि राम सरिस नहि आन सुनोरी ॥

सिन्धुसुता सों बढि तिमि रूपसि बिस्व विमोहनि सीध कहोरी ।

दसरथ जनक नैन के तारे खेलै सदा प्रेम की होरी ॥ १ ॥

दसरथ सम जग को नृप आन ।

जाकी भृकुटि भंग के होतहि लगै सूर थरान ।

बधे अनेकन असुर प्रतापी, मेदि सबन की सान ॥

अस्वमेध करि चारु यथा बिधि किय बरधित निज मान ।

कहाँ कहाँ लगि महिमा ताकी को करि सकै बखान ॥ २ ॥

(पटाक्षेप)

आठवाँ दृश्य

स्थान—अयोध्या का मार्ग

(कुछ सिपाहियों का प्रवेश)

पहला सिपाही—भाई ! महाराज जनक तउ दाइजु अइस बढिया दिहिनि हइ कि कुछ कहति नहीं बन्ति हइ ।

दूसरा सिपाही—राजा क मिला सो मिलबै कीन, हमहूँ पंचन लगे क नाई भूले । सबका निहाल कइ दिहिनि ।

तीसरा सिपाही—अरे यत्ता सामानु दिहिनि हइ कि सबका सब अजुध्या लगे पहुँचाउबु एक बड़ा कामु हइगा हइ ।

पहला सिपाही—फिरि भाई एकु छोड़ि चारि चारि बियाहउ तउ कइ लिहिनि । अरे कुमार लल्लिमन कि रानी क का नाउँ हइ ? यहइ जनउ मिला मिला अस कुछ कहति रहँई ।

दूसरा सिपाही—अरे उनका नाउँ हइ उर्मिला, भरत कि रानी क मांडवी, अउ शत्रुघ्न वाली क श्रुतिकीर्ति । ई दूनउँ महाराज के भाई कुशध्वज कि बिटिया आई, जिनका राजु सांकाश्य मैं हइ ।

तीसरा सिपाही—तुम तउ सबु हालु अइसा बताय दिहउ जनउ मिथिला केर उपरहित तुमहें आउ ।

दूसरा सिपाही—अरे उपरहित होइति तउ मजेहे मैं न रहिति ।

पहला सिपाही—सुना इनका खेतितु कि बड़ी सउख हइ ।

दूसरा सिपाही—सउख तउ असि हइ कि याक दाईं सूखा मैं खुदइ हरु ज्वातइ लाग ।

तीसरा सिपाही—तबहें तउ बाँभन ठाकुर सब जोति चले । अइसि खेती उपजी कि देसु हरेर हइगा ।

पहला सिपाही—वहे ज्वातइ के दूसरे तिसरे दिन सीताजी का जलमु भा रहइ । तेहेते तउ भुईं की कन्या कहउती हई ।

दूसरा सिपाही—बियाहउ बड़ी धूम ते मे ।

तीसरा सिपाही—राजकुमारउ सबका अच्छे-अच्छे मिले । चारिउ भाइन मैं मेलउ बहुतु हइ । (मुनि के वेष में, किन्तु धनुष, निषंग, परशु आदि भी लिये हुये परशुराम का प्रवेश) ।

परशुराम—(सिपाहियों से) यह किसकी सेना है ।

(सब सिपाही प्रणाम करते और आशीर्वाद पाते हैं ।)

परशुराम—प्रश्न का उत्तर तो दो ।

दूसरा सिपाही—यह फउज, अन्नदाता ! राजा दशरथ कि हइ ।

परशुराम—उन्हीं के बेटे राम ने शैव पिनाक तोड़ा है न ?

पहला सिपाही—हाँ महाराज ! अइस बलु देखाइनि कि दुनिया भउचक्कि क रहि गइ ।

परशुराम—उनमें से किसी को अभी बोलाओ ।

तीसरा सिपाही—तउ महाराज ! का कही कि को बोलावति हइ ?

दूसरा सिपाही—अरे जानति नाईं हउ कि सूर सिरोमनि महर्षि परसुरामजी सामने ठाढ़ हईं ?

तीसरा सिपाही—(काँपता हुआ) तउ मईं अबहें बोलावति हउँ ।
(सब सिपाहियों का प्रस्थान । महर्षि विश्वामित्र, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का प्रवेश । चारों राजकुमार परशुराम को प्रणाम करते तथा आशीर्वाद)

पाते हैं अथच परशुराम विश्वामित्र के पद वन्दन करके तथा गले मिलकर आशीर्वाद पाते हैं ।)

परशुराम—(राम से) प्रसिद्ध शैव पिनाक क्या आप ही ने तोड़ा है ?

राम—ऋषिवर ! मैंने उसे तोड़ा क्यों, वरन् नियमानुसार बाण चढ़ा करके ज्यों ही प्रत्यंचा तानी कि वह पुराना धनुष बीच से आप ही टूट गया ।

भरत—ऋषिवर ! इनका इसमें क्या दोष है ?

परशुराम—यदि वह ऐसा सड़ा हुआ था तो सारे संसार के भूपाल, राजपुत्र, तथा मैकड़ों इतर धनुर्धर उसे उठा तक क्यों न सके ?

राम—इस प्रश्न का उत्तर भला मैं क्या दे सकता हूँ ?

लक्ष्मण—इतना प्रकट ही है कि उसे तोड़ने से दादाजी को कोई लाभ न था । इन्होंने ज्या पर बाण ताना भर था ।

परशुराम—ऐसा ही मैं भी समझता हूँ कि जान बूझकर यह उसे क्यों तोड़ते ? फिर भी मैंने प्रण कर रक्खा था कि यदि कोई मेरे गुरुवर श्रीमहादेवजी के किसी अस्त्रशस्त्र का निरादर करेगा तो मैं उससे द्वन्द्व युद्ध करूँगा ।

राम—निरादर तो मैंने कुछ भी नहीं किया, वरन् एक प्रकार से उसका आदर ही किया, क्योंकि उसे पुष्ट समझकर जोर से ज्या तानी जिससे वह टूट ही गया ।

परशुराम—इस तर्क में भी बहुत कुछ सार है । वह शायद इतना जीर्ण हो चुका था कि किसी के भारी पौरुष को सम्हाल न सका, यद्यपि ऐसी दशा में भी पृथ्वीमण्डल के प्रायः सब धनुर्धर उसके महत्व से पराजित हो चुके थे ।

भरत—ऋषिवर ! बिना इच्छाशक्ति के किसी का निरादर नहीं होता । आशा है कि आप अब क्षमा करेंगे ।

राम—हमारे गुरुदेव के आप मान्य हैं जिससे आपका सामना करना हमारे लिये असम्भव है ।

परशुराम—इच्छा न रखते हुये भी आपके बल से शैवपिनाक का निरादर अवश्य हुआ है, ऐसी दशा में मैं द्वन्द युद्धार्थ आपको प्रचारता हूँ । (परशु दिखलाकर) इस परशु ने सैकड़ों युद्धोत्साही वीरों के कंठ-रुधिर का पान किया है; आज आपकी बारी है ।

राम—युद्धार्थ प्रचारे जाने से मैं विमुख कभी नहीं हो सकता, किन्तु गुरुदेव के मान्य का शरीर सत्तत करना भी मेरे लिये असम्भव है । क्या इन्होंने इसीलिये मुझे शस्त्रास्त्र प्रहार की विधि सिखलाई थी ?

परशुराम—यह मैं भी समझता हूँ कि बड़े धर्मसंकट का सामना पड़ गया है । मेरे पास कोई सेना है नहीं; यदि कोई राजा सेन सन्धान करे, तो मुझसे उसका युद्ध नहीं हो सकता । आप ऐसा ही कीजिये या विमुख हो जाइये ।

भरत—क्या सूर्यकुल में कोई पौरुष शेष नहीं कि द्वन्द युद्ध के लिये प्रचारनेवाले से विमुख होवें अथवा उस पर सेन सन्धान करें ?

परशुराम—तो मैं देखता हूँ कि मेरे परशु को क्रमशः तुम चारों का रुधिर पीना है ।

लक्ष्मण—इतना अहंकार हम लोगों ने कभी किसी का अब तक सहा नहीं है ।

परशुराम—यही मैं भी चाहता हूँ; यदि कुछ भी युद्धोत्साह हो तो एक एक करके या चारों साथ ही साथ निकल आइये ।

लक्ष्मण—यदि आपको इतना भारी अहंकार है तो शायद हमको भी गुरुवर से युद्धार्थ आज्ञा माँगनी पड़ेगी ।

राम—गुरुदेव की भगिनी के पौत्र तथा एक सुयशी योद्धा से ऐसी बातें तुम्हें शोभा नहीं देतीं ।

भरत—सुयशी योद्धाओं से युद्धोत्साह सम्बन्धी ऐसी बातें कुछ अयोग्य नहीं ।

राम—किन्तु गुरुवर के मान्य स्वजन का भी तो प्रश्न है ।

शत्रुघ्न—इस बात का कोई उत्तर नहीं । यदि वृद्ध परशुधर महोदय हम लोगों के सिर तक काट लेवें, तो भी हम उफ़ नहीं कर सकते ।

राम—समझ लीजिये पूज्य परशुधरजी ! आपके उद्दित कुठार के सामने हमारे मस्तक नत हैं ।

परशुराम—क्या मैं अधिक हूँ जो नतमस्तक वीरों पर प्रहार करूँ ?

भरत—तब फिर क्षमा से काम लीजिये ।

परशुराम—क्षमा के योग्य तो तुम लोग हो, किन्तु ऐसा करने से प्रण भंग होता है । आप ही लोग क्यों न सेन सन्धान कर दीजिये अथवा युद्ध से निवृत्त हो जाइये ।

राम—ऐसा कैसे हो सकता है ?

परशुराम—तो युद्ध अवश्यम्भावी दिखता है; क्यों मौत घेरे हुये हैं ?

लक्ष्मण—जिस समय आपने हैहय वंश विध्वंस करके संसार में अक्षय यश कमाया था, तब शायद ऐसे वृद्ध न थे जैसे कि आज हैं ।

परशुराम—इसका निर्णय युद्धक्षेत्र करेगा कि बढ़ती हुई अवस्था से मेरा पौरुष कहाँ तक क्षीण हुआ है ?

शत्रुघ्न—क्या आप समझते हैं कि आपको रचकर ब्रह्मा ने वीर विरचन के काम से अवकाश ग्रहण कर लिया है ?

परशुराम—इस प्रश्न का भी उत्तर युद्धक्षेत्र ही दे सकता है ।

भरत—यदि आपके पीछे उत्पन्न कोई आपके बराबर ही शौर्यवान हो, अथवा थोड़ा ही कम हो, तो भी आयु के देखते हुये वह आप पर प्रबल पड़ सकता है ।

परशुराम—सम्भव है ।

भरत—तब ।

परशुराम—तब क्या ? प्रण मेरी वर्तमान शक्ति से असम्बद्ध है । मरना कभी है ही, आज ही सही ।

राम—पूज्यवर ! आप ही विचार कर लीजिये जिसमें आपका प्रण सध जावे तथा हम लोगों की भी न तो गुरुभक्ति गिरे न कादरपन का कलंक लगे ।

परशुराम—प्रयोजन यह निकला कि न तो आप युद्ध करेंगे न विमुख होंगे ।

राम—मामला ही ऐसा है, किया क्या जाय ?

विश्वामित्र—(परशुराम से) बेटाजी ! तुमने हमारी बहेन का कुल उजियाला कर दिया है । मैं नहीं चाहता कि किसी प्रकार तुम्हारे मान-मर्यादा में कमी आवे ।

परशुराम—ऐसा व्यवहार आपका हमारी तीन पुस्तों के साथ चला आ रहा है । इसके स्वयं वेद भगवान भी साक्षी हैं ।

ऋषि विश्वामित्र—उधर यह भी देखते हो कि इन बच्चों के हाथ मेरी ही इच्छा से मुझे सम्राट् दशरथ ने पकड़ाये हैं ।

परशुराम—सो भी प्रकट ही है ।

ऋषि विश्वामित्र—मैं न तुम्हारा अमंगल देख सकता हूँ न इनका ।

राम—गुरुदेव ! आपकी कृपाओं का गान कहाँ तक हो सकता है ।

ऋषि विश्वामित्र—यह भी निश्चित है कि दोनों पक्षों में से किसी का भी प्रण न टूटना चाहिये ।

परशुराम—धन्य बाबाजी ! आपसे ऐसी ही आशा है ।

विश्वामित्र—तुमने शैवपिनाक के निरादरकर्ता से युद्ध करने का प्रण किया है, किन्तु वाक् युद्ध भी युद्ध ही है ।

परशुराम—क्या क्या ?

ऋषि विश्वामित्र—ऐसा ही ठीक है । मेरा संकोच छोड़कर तुम दोनों वाक् युद्ध प्रारम्भ करो । अन्त में आप ही निर्णय हो जायेगा या मैं युद्ध तक की आज्ञा दे दूँगा ।

भरत—तो मैं पूछता हूँ कि जब हैहय राज्य की वैश्य और शूद्र

प्रजा ने राजा का अत्याचार न सह कर विद्रोह किया और उनके नेता बनकर आपने उस वंश का ध्वंसन किया, तब स्वयं राज्य क्यों न ग्रहण किया ?

परशुराम—मैं न क्षत्रिय धर्म धारण करना चाहता था न स्वार्थी होना ।

राम—क्षत्रिय धर्म पकड़ ही चुके थे, नहीं तो युद्ध कैसे किया ? स्वयं आपके पितामह ऋचीक मुनि ने यही धर्म पकड़ा था अथच पिता जमदग्नि ने शस्त्रविद्या सीखी थी, यद्यपि शान्त स्वभाव के कारण उसे छोड़ दिया था ।

परशुराम—क्षत्रिय धर्म मैंने पकड़ा अवश्य था, किन्तु उसका स्थापित रखना मेरे लिये आवश्यक न था ।

राम—यदि कोई योग्य पुरुष राज्य के लिये मिल सकता तो, अन्यथा नहीं । एक राज्य गिराने से उसके सुपालन का भार आप पर आया कि नहीं ?

परशुराम—मैंने राज्यभार उन्हीं लोगों को सौंप दिया था ।

राम—क्षमा क्रीजियेगा, यदि कान्यकुब्ज और वैशाल नरेश आपकी सहायता पर न होते, तो क्या केवल वैश्य और शूद्रों के दल से हैहय कुल का पराभव हो जाता ?

परशुराम—सो तो कदाचित् न होता ।

राम—तब आपकी वैश्य और शूद्र प्रजा ने न तो वह राज्य कमाया था न उसे चलाने की उसमें योग्यता थी । फिर आपने स्वयं उसे क्यों न संहाला ?

परशुराम—वही स्वार्थ का प्रश्न था ।

भरत—राज्य एक गुरु भार है । बहुत से राजा स्वार्थी अवश्य होते हैं, किन्तु उनके ऐसे न होने से वह सुचारु रूप से परिचालित हो कि नहीं ?

परशुराम—हो अवश्य, किन्तु मैंने उन्हें योग्य समझा था ।

लक्ष्मण—जो बात पीछे की घटनाओं से असिद्ध प्रमाणित हो गई ।

परशुराम—असिद्ध न होने से मैं स्वयं कार्तवीर्य जयध्वज की सहायता करके उसे फिर से राजा क्यों बनाता ?

राम—जिसका फल यह हुआ कि उसके पुत्र तालजंघ ने समय पर बढ़ कर स्लेच्छों की सहायता से आप ही के मातामह वैशाल वंश को हराकर प्रमति को राज्यच्युत कर दिया कि नहीं ?

परशुराम—ऐसा हुआ ही ।

राम—फिर आपके दूसरे सहायक पितामही वंश वाले कान्यकुब्ज राज्य को ध्वस्त करके गुरुदेव के पौत्र महाराजा लौहि की भी उसने वही दशा की ।

परशुराम—इन दोनों बातों का मुझे भी बड़ा खेद है ।

राम—केवल खेद से क्या होता है ? विप्रवर ! आपके दोनों सहायक राज्य गिर गये । इसका प्रतीकार क्या हुआ ?

परशुराम—उस काल तालजंघ की शक्ति असह्य हो गई थी ।

राम—फिर देखने की बात है कि महर्षि भरद्वाज ने काशीपति प्रतर्दन की सहायता की तथा आप ही के स्वजन अग्नि और वै सगर की कर रहे हैं ।

परशुराम—हाँ, इनसे वीतिहोत्र के बल का पराभव हुआ तथा वंश का शायद और भी हो । फिर भी मैं पूछूँगा कि आपकी सम्मति में इन लोगों का पौरुष सहस्रार्जुन के समान ही होगा ?

राम—यह कौन कह सकता है ? काशिराज प्रतर्दन तथा सगर की शक्ति आपके सामने नगण्य है ही ।

परशुराम—तब फिर ।

राम—यह शक्ति का प्रश्न नहीं है विप्रवर !

परशुराम—राजनीति के एक बार छोड़ चुकने से अपने ही द्वारा पुनर्स्थापित हैहयवंश की प्रतिकूलता मुझे पसन्द न आई ।

राम—आप के ऐसे विचारों में एक प्रकार की महत्ता अवश्य थी, ऐसा मैं भी मानता हूँ, किन्तु राजनीति केवल सद्विचारों और प्रेम-पूर्ण भावों पर नहीं चलती। मैं पूछता हूँ कि आप ही के द्वारा पुनर्स्थापित हैहयवंश से जो कई भारतीय नरेशों का अमंगल हुआ तथा देश में म्लेच्छों का बहुत कुछ प्राधान्य फैला, इसका कुछ उत्तर-दायित्व आप पर है या नहीं ?

परशुराम—आता अवश्य है।

राम—मैं मानता हूँ कि आपके भी सारे कार्य महत्ता और स्वार्थ-त्याग के उदाहरण थे, किन्तु भारतीय राजनीति का उपमर्दन आपके उच्चाशयपूर्ण कार्यों से न्यूनाधिक हो गया कि नहीं ?

परशुराम—अब मैं वाग्युद्ध में पराजित हो गया। (अपना वैष्णव धनुष राम को देकर) लो इसे चढ़ाकर बाण से तो युक्त करो।

राम—(ऐसा ही करके) कहिये अब क्या आज्ञा है ?

परशुराम—इसी धनुष तथा (निषंग देकर) इन्हीं बाणों से आर्यों के विरोधी सभी आततायियों का मान-मर्दन करो।

राम—जो आज्ञा। (चरण स्पर्श करते और आशीर्वाद पते हैं।)

परशुराम—मैं देखता हूँ कि मैंने हैहयों का मान करके ही अशुद्धाचरण न किया, वरन् आज भी भारत मुखोज्ज्वलकारी बाबाजी द्वारा सम्मानित एक राजवंश की प्रतिकूलता में प्रवृत्त था।

राम—समझ पड़ता है कि यह उत्तेजना भी आपको रावण के किसी सहायक से मिली होगी।

परशुराम—हुआ ऐसा ही; मारीच ने मुझे यह हाल बतलाया था।

राम—फिर आपही सोचिये।

ऋषि विश्वामित्र—(राम से) वेटा ! अब इन्हें अधिक लज्जित न करो।

राम—(परशुराम से) ऋषिवर ! मेरी धृष्टता क्षमा हो। आप ही की इच्छानुसार, वरन् प्रण साधने को मैंने ऐसी नीरस बातें कीं।

आशा है कि आप इन्हें भूल जायेंगे तथा गुरुवर के समान आशीर्वाद भी देते रहेंगे ।

परशुराम—आपका कहना सब प्रकार से योग्य है । (विश्राम में)
अब बाबाजी ! मुझे आशा दीजिये । (प्रणाम करते हैं) ।

ऋषि विश्वामित्र—जुग जुग जीओ बेटा जी ! चित्त प्रसन्न रहा न ?

परशुराम—अवश्य ।

(पटाक्षेप)

द्वितीय अंक

पहला दृश्य

स्थान—अयोध्या, मन्नाट् दशरथ का महल ।

(महारानी केकयी और मन्थरा बैठी हैं ।)

मन्थरा—बेटी रानी ! कुमारजी बहुत दिनों से नानेरे में हैं, किन्तु आपको कुछ चिन्ता नहीं समझ पड़ती ।

केकयी—चिन्ता किस बात की ? वहाँ प्यारे भरत को क्या कोई कष्ट हो सकता है ?

मन्थरा—सो बात नहीं है, राजकुमारीजी । किन्तु यहाँ जो राम का युवराजोत्सव होनेवाला है, वह !

केकयी—इसका तो बहुत दिनों से सम्भार चल रहा है । इसकी तुम्हे क्या चिन्ता है !

मन्थरा—कुछ स्मरण है कि केकयनरेश ने क्या कहकर तुम्हे आपके साथ भेजा था ?

केकयी—याद क्यों नहीं है ? तुम्हे मेरी सखी बनाकर भेजा था । क्या मैं कभी कोई काम बिना तुम्हारे पूछे करती हूँ ? वरन् तुम्हारी ही उलटी मति से भरत महर्षि विश्वामित्र के साथ न जा सके जिससे जैसा यश लक्ष्मण का हुआ वैसा अब तक उनका नहीं है ।

मन्थरा—यदि कोई चट औचट पड़ती तब कैसा होता ? लड़ाई की बात थी ।

केकयी—इसीलिये भेजा नहीं, किन्तु बिना कोई जोखिम लिये कहीं नाम होता है ?

मन्थरा—वह बात तो हो चुकी; अब आज के मामले पर सोचना है।

केकयी—आज मामला ही क्या सामने है जो सोचना हो ?

मन्थरा—मामला सारे कोशल महाजनपद का है। आपके लिये शायद यह प्रश्न भी बहुत छोटा हो।

केकयी—छोटा क्यों होने लगा, किन्तु राम भी माना मेरा ही लड़का है ; उसके तिलक में तुझे शंकायें क्यों उठ रही हैं ?

मन्थरा—मैं देखती हूँ कि आपके विचार में महाराज केकय बेसमझ थे जब उन्होंने विवाह के पूर्व सम्राट् से आप ही के भावी पुत्र के राजा होने का निबन्ध किया था।

केकयी—बेसमझ क्यों, वे दुनिया देखकर चलते थे, किन्तु यह थोड़े ही जानते थे कि ज्येष्ठ पुत्र राम ऐसे गुणी होंगे।

मन्थरा—यदि गुण ही पर राज्य मिलता हो और मन्त्री सुमन्त का बेटा महाजनपद में सबसे गुणी निकले, तो शायद वही सम्राट् बना दिया जाय।

केकयी—ऐसा क्यों कहती हो, किन्तु ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार छीनने में स्वार्थपरता होती है। राम का राज्य पर जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसे सतोगुणी बच्चे के साथ बुराई करनी, जो मुझे भी सगी माता से कम नहीं मानता, कुछ बेजा लगता है।

मन्थरा—क्षमा करना बेटीजी ! आप अपने ही पुत्र की शत्रु हैं। जो पद उसके नाना ने जन्म के पहले से उसके लिये कमा रक्खा था, वह भी आपका रक्खा नहीं रहता। धन्य है आपके सौजन्य को।

केकयी—लोग सच कहते हैं कि काने-कुबड़े आदि खोटे होते हैं। तू कुबड़ी है ही, सो सिवा स्वार्थ के तुझे कुछ सूझता नहीं।

मन्थरा—सूझे कहाँ से, मेरा तो सारा महाजनपद जा रहा है; भला इतना बड़ा साम्राज्य कहाँ से छोड़ते बने ?

केकयी—तेरा काहे को जाता है ? कहती तो तुम मेरे ही भले की हो, किन्तु बात औंधी है।

मन्थरा—जब साल दो साल में राम का अधिकार जम जायगा और सारे राजकाज से दूध की-सी मक्खी निकालकर बाहर कर दी जाओगी, तब पता पड़ेगा कि मैंने क्या कहा था। उस समय सिवा सिर पर हाथ रखकर रोने के कोई युक्ति ही न रहेगी, क्योंकि बूँद का चूका घड़ा ढरकाने से भी वापस नहीं आता।

केकयी—अरी दुष्टे ! ऐसा क्यों होने लगा ? क्या मुझमें कोई शक्ति ही न रहेगी ?

मन्थरा—अब आप गाली गलौज पर उतर आई हैं, सो मैं यहाँ से चलती हूँ। मेरा कहा सुना ज़मा करना, बेटीजी !

केकयी—जाओगी कहाँ ?

मन्थरा—जाऊँगी महाराज केकयपति के यहाँ। जब आपको भला बुरा सूझता ही नहीं, तब यहाँ रहकर उनके सामने क्या मैं अपने मुख में कालिख पुतवाऊँगी ?

केकयी—क्या मैं सचमुच कुयें में गिर रही हूँ ?

मन्थरा—कुयें में गिरना और होता कैसा है ? तुम्हें बेटी ! सोहाग का इतना गर्व है कि ऊँच नीच कुछ सूझती ही नहीं। यदि सम्राट् तुम्हें इतना चाहते होते तो बिना पूछे पुराने वचन को भंग करके तथा बेचारे भरत को नानेरे भेजकर चुपके-चुपके रामाभिषेक का मामला क्यों करने लगते ?

केकयी—पूछने की क्या आवश्यकता थी ? क्या मैं जानती नहीं हूँ कि ऐसा हो रहा है ?

मन्थरा—तभी कहती हूँ कि “जेहि बिधिना दारुन दुख देई; तेहि की मति पहिले हरि लेई।” आपका महारानी कौशल्या से बिनता कद्रूवाला मामला होगा। सौतों की सैकड़ों कथायें चल रही हैं। क्या तुमने एक भी नहीं सुनी है ? क्या मैं अपने लिये कुछ माँगे लेती हूँ ?

केकयी—बात तेरी ठीक समझ पड़ती है। अच्छा बतला कि मैं क्या करूँ ? अभी चूकने से समय पर पछताना अवश्य पड़ेगा।

मन्थरा—करना क्या है, जब आज सम्राट् यहाँ आवें, तब अपने पुराने दोनों वरों का भी स्मरण दिलाकर भरत को राज्य तथा राम के लिये चौदह वर्षों का वनवास माँग लीजिये, जिससे मौत की सब उमंगें धूल में मिल जायें।

केकयी—यही ठीक है, किन्तु क्या राम को वनवास भी हो ?

मन्थरा—ऐसा न होने से भरत का राज्य जमेगा कैसे ? प्रजा में विद्रोह तक सम्भव है। राज्य दृढ़ता के लिये वनवास आवश्यक है। ममभी !

केकयी—किन्तु.....

मन्थरा—मामला भारी है, किन्तु, परन्तु से काम न चलेगा। (आलोक शब्द सुनकर) देखिये सम्राट् पधार भी रहे हैं; अब मैं चलती हूँ। (मन्थरा का प्रस्थान—सम्राट् का प्रवेश।)

दशरथ—(केकयी के निकट बैठते हुये) प्राणप्रिये ! आज तुम्हारा चेहरा कुछ उतरा हुआ है। क्या बात है ?

केकयी—नाथ ! आपने सदैव मुझ पर स्नेह दिखलाया; किन्तु अब ऐसा समझ पड़ने लगा है कि वह दिखावा मात्र था, वास्तविक नहीं।

दशरथ—यह सन्देह तुम्हें कैसे हाँ गया ? मुझसे क्या दोष बन पड़ा जो ऐसे नीरस वचन तुम्हारे मुख से निकले ? कहो तो सही क्या बात है ?

केकयी—आप पन्द्रह बीस दिनों से राम के युवराजोत्सव के प्रबन्ध कर रहे हैं; क्या मुझसे इस विषय में कुछ पूछने की आवश्यकता न थी ?

दशरथ—होने से तुम स्वयं कहतीं; क्या तुमसे छिपाकर कुछ हो रहा है ?

केकयी—छिपाकर हो चाहे खुले-खुले, किन्तु विवाह के पूर्व मेरे पिताजी को जो वचन दिये थे, वे स्मरण हैं कि नहीं ?

दशरथ—हैं क्यों नहीं, किन्तु राम क्या तुम्हारे पुत्र नहीं हैं ? क्या तुमने उन्हें भरत से कभी कम माना ?

केकयी—मेरी भलमंसी के कारण क्या भरत के अधिकार आप छीनना चाहते हैं ? इन्हीं बातों से आपका कपटव्यवहार प्रकट होता है ।

दशरथ—कपट तब होता जब तुमने कुछ बात कही होती; यदि यह बात ऐसी स्वयंसिद्ध थी तो अब तक तुम्हीं ने कही क्यों नहीं ?

केकयी—माना कि मैंने संकोच किया, किन्तु इससे मेरे नियत अधिकार क्या लुप्त हो जायेंगे ? शम्बरामुर के युद्ध में दो वरदान भी आपने देने को कहे थे ।

दशरथ—वे अब भी थाती रूप से हैं; जब चाहो माँग लो ।

केकयी—क्या सचमुच देने को तैयार हैं ? फिर पीछे से और की और न कहने लगियेगा ।

दशरथ—रघुकुल में क्या कभी किसी ने वचन भी बदले हैं ? यह भली कही ।

केकयी—अच्छा, एक वरदान मैं यह माँगती हूँ कि भरत को युवराज पद मिले और दूसरा यह कि तापस वेप में राम चौदह वर्ष वनवास करें ।

दशरथ—(शिर धनकर) हाय महारानी ! क्या अन्त में प्राण लेने ही को तुमने उस युद्ध में मुझे बचाया था ? भरत को राज्य अवश्य दो, किन्तु निरपराध राम को वनवास क्यों ?

केकयी—बिना ऐसा हुये उनके सामने मेरे पुत्र का अधिकार जमेगा ही नहीं । कहीं काले के आगे दिया जलता है ?

दशरथ—अरी केकयी ! क्या तेरी सारी सौम्यता दिखलाने भर को थी ? हाय रानी ! पतिभक्ति भी कोई वस्तु है ।

केकयी—क्या पति को स्त्री से प्रेम न करना चाहिये ? ताली दोनों हाथों से पिटती है, केवल एक से नहीं ।

दशरथ—मैंने प्रेम में कौन-सी कमी की ? मैंने तो तुम्हारे आगे किसी और को पत्नी तक न माना ।

केकयी—यही आपका प्रेम है कि वचनबद्ध रहने पर भी मेरे पुत्र का राज्यारोहण नहीं देखा जाता ।

दशरथ—मैं तो उसे देखने को सहर्ष प्रस्तुत हूँ, केवल अधर्मपूर्ण वनवास की आज्ञा कैसे दूँ ? दे वह भी रहा हूँ, किन्तु तुम्हीं से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे प्राण बचा ले । बिना राम के मैं जी नहीं सकता । क्या सर्वस्व देकर इतनी भीख भी नहीं पा सकता ?

केकयी—क्षत्रिय और सम्राट् हाँकर अभी से भीख का भी माँगना क्या आपको शोभा देता है ? जब राम के यहाँ रहने से उन पर अयोध्यावासियों के भारी प्रेम के कारण भरत का प्रभुत्व जमेगा ही नहीं, तब वास्तव में आप राज्य दे ही कब रहे हैं ?

दशरथ—तो राम का दोष यही है कि प्रजा का प्रेम उन पर बहुत है ।

केकयी—है तो यह भारी गुण, किन्तु इसी से मेरे पुत्र के राज्य की अस्थिरता रूपी दोष निकलता है ।

दशरथ—देखो महारानी ! मैं तो तुम्हें दोनों वरदान देता हूँ किन्तु उसी के साथ राम वियोग में मेरे प्राण विसर्जित भी हो जायँगे । क्या तुम समझती हो कि भरत ऐसे राज्य को ग्रहण करेंगे ? समझ लो, तुम्हारे हाथ कुछ आवेगा नहीं । भरत मेरा भी पुत्र है, केवल तुम्हारा नहीं । उसमें असंख्य सद्गुण हैं ।

केकयी—उन सद्गुणों का गर्व जब आप करते हैं तब उसके राज्य के चिरस्थायी करने में बाधा क्यों डालते हैं ?

दशरथ—बाधा केवल तुम्हारी कल्पना है । क्या तुम समझती हो कि मेरे प्रयत्नों के होते हुये भी प्रजा का विद्रोह भरत के प्रतिकूल जोर पकड़ ही जायगा ?

केकयी—मुझे यही भ्रव दिखता है । यदि राम पर आपका प्रेम

इतना घनिष्ठ न होता, तो आपके भरत सम्बन्धी प्रयत्न पूर्णता को पहुँचते ।

दशरथ—और अब ।

केकयी—अब न चाहते हुये भी और प्रतिकूल प्रयत्न करते हुये भी आपके कर्मों से राम का प्रभाव बढ़ेगा, जिससे दो स्वामियों की स्थिति से राज्य विगड़ जायगा ।

दशरथ—महारानी ! मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसा न होगा । न तो राम भरत के प्रतिकूल प्रयत्न करेंगे और न मैं ऐसी बातों का समर्थन करूँगा ।

केकयी—मानुषीय प्रकृति को देखते हुये मुझे इस बात की सफलता पर विश्वास नहीं है । कहते आप सच हैं, किन्तु प्राकृतिक क्रियाओं को मनुष्य चाहते हुये भी नहीं रोक सकता । आन्तरिक गड़बड़ों से अयोध्या का राज्य बाहरी शक्तियों के रोकने में सक्षम न रहेगा ।

दशरथ—ऐसा क्यों होने लगा ?

केकयी—सुदास का राज्य क्यों गिरा ? क्या अक्षुण्ण शक्ति राज्य की स्थिति के लिये आवश्यक नहीं ?

दशरथ—जब तालजंघ आदि के समय तक में हमारा राज्य दृढ़ रहा, तब इन दिनों कौन भारी परचक्र सामने है ?

केकयी—आपने कौशल्या की सलाह से सम्राट् रावण से बिगाड़ कर रक्खा है, फिर भी कोई परचक्र प्रबल नहीं देखते ?

दशरथ—जब रावण, वर्चिन, भेद और शम्बर चारों प्रस्तुत थे, तब तो उत्तरी भारत में आर्यों का बल गिरा नहीं, अब अकेला रावण यहाँ क्या कर लेगा ? उसका उत्तरी उपनिवेश दूढ़े बारह वर्षों से अधिक हो चुके हैं और अब तक उसे कोई प्रयत्न करने का साहस तक न हुआ ।

केकयी—आन्तरिक दुर्बलता देखकर अवश्य करेगा ।

दशरथ—मेरी प्यारी केकयी ! तुझे आज क्या हो गया है जो मुझसे भी बढ़कर राजनीतिज्ञ हो रही है ? न तो समझाने से मानती है, न पैर तक पड़ने से । सारे जीवन के प्रेम और आज्ञापालन तथा अन्त में सर्वस्व तक दे डालने का क्या यही पुरस्कार है ?

केकयी—कहाँ सर्वस्व दे रहे हैं ?

दशरथ—(पैर पकड़कर) मान जा रानी ! मेरे प्राण रख ले । देख राजा और तेरा प्रेमी पति हूँ ।

केकयी—बड़ा शोक है कि मुझे अन्त में आपके प्रेम में विश्वास नहीं रह गया है । अब भी अपनी मानसिक निर्बलता छोड़ दीजिये तो कुछ नहीं गया है । समझ लीजिये, दो नावों पर पैर रखने से अमंगल का भय है । या तो मेरी ही ओर रहिये या कौशल्या ही के हो जाइये । दोनों का साथ ही मान असम्भव है ।

दशरथ—मैं शपथ ग्वाकर कहता हूँ कि उन्होंने इस विषय पर मुझसे कुछ नहीं कहा है ।

केकयी—क्यों कहें, जब बिना कहे ही उनका मतलब बन रहा है । मैं फिर कहती हूँ कि दुजागी और धोखेबाजी से प्रेम नहीं रहता ।

दशरथ—यह रानियों का प्रश्न न होकर पुत्रों का है, रानी जी ! हाय मैंने चारों पुत्रों में किसी पर न्यूनाधिक प्रेम कब किया ?

केकयी—यह भेद दूसरों को समझ पड़ता है, आप क्योंकर समझेंगे ?

दशरथ—तब समझ गया कि तुझे पतिघातिनी होने का पाप कमाना है । (मूर्छित होकर गिरना)

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या, कौशल्या का राजमहल ।

(राम, लक्ष्मण और कौशल्या का प्रवेश ।)

कौशल्या—हाय बेटा ! यह क्या हो गया ? अब क्या किया जाय ?

लक्ष्मण—क्या माता पिता में भेद होता है ?

राम—भेद कैसा ? होने से भी उन दोनों में माता ही का पद बड़ा है, किन्तु यहाँ केवल पिता की नहीं बल्कि राजा की भी आज्ञा है ।

कौशल्या—पिता तो आज्ञा दे नहीं रहे हैं, केवल बेमन से राजाज्ञा दी गई है ।

लक्ष्मण—आपके द्वारा उसका पालन न होने से उसे चलानेवाला कौन बैठा है ?

राम—जिस राज्य ने आजीवन पालन पोषण किया, क्या उसने समय पर अपनी मर्यादा भंग कराने को ऐसा किया था ?

लक्ष्मण—आप ठोस पृथ्वी पर पैर रखते ही नहीं, कोई कहे सो क्या कहे ?

राम—अनुचित स्वार्थपरता का उपदेश क्या तुम्हारी शिक्षा को शोभा देता है ?

कौशल्या—तुम्हारे पिता ऐसे अधीर हैं कि जीने तक की आज्ञा उन्हें शेष नहीं ।

राम—ऐसा केवल प्रेमवश सम्भूत है, किन्तु अन्ततोगत्वा धैर्य करेंगे ही ।

लक्ष्मण—क्या माताजी की आज्ञा आपको अमान्य है ?

राम—उन्होंने कोई आज्ञा दी कब है ?

लक्ष्मण—माताजी ! अब दे ही दीजिये आज्ञा । दादाजी बेमन वाली राजाज्ञा का इतना मान कर रहे हैं कि स्वयं पिता की इच्छा और माता की आज्ञा को भूले जाते हैं ।

कौशल्या—वत्स ! क्या मैं चौदह वर्षों तक जीवित रहकर कभी फिर इस कमल-वदन के देखने का सौभाग्य पाऊँगी ? आज्ञा तो नहीं है ।

लक्ष्मण—तब रोक क्यों नहीं लेती ?

कौशल्या—इसमें राजाज्ञा की अमान्यता तथा बन्धु-विरोध के प्रश्न हैं । करूँ सो क्या करूँ ?

लक्ष्मण—हाय माताजी ! मैं नहीं जानता था कि आप केवल माता नहीं वरन् स्वर्ग की देवी भी हैं। अच्छा, यों ही सही ! फिर चलूँगा साथ मैं भी।

राम—तुम्हारे बिना मेरा नाम तक अधूरा-सा लगता है; फिर भी अयोध्या में इस समय रहा कौन जाता है ? सारे राज परिवार तथा साम्राज्य के रक्षण का भार भाई भरत के न आने तक तम्हीं पर है। यह भी समझ रखो।

लक्ष्मण—गुरु वशिष्ठ ने तृशंकु के राज्य को अकेले चलाया था। इन बातों का बोझ मुझ पर क्या है ? मैंने न कभी आपके चरण छोड़े हैं, न आज छोड़ सकता हूँ।

कौशल्या—मेरे लाल ! तुम्हारे साथ होने से इन्हें सभी प्रकार की सुविधा होगी, किन्तु बहन सुमित्रा की इच्छा क्या है सो भी जानते हो कि नहीं ?

लक्ष्मण—उनसे मैंने पहले ही पूछ रक्खा है।

राम—मैं कहता हूँ कि राजमहल का सुख तथा वनों का दुख, इनके भारी अन्तरों को समझकर तुम्हें अब भी सचेत हो जाना चाहिये।

लक्ष्मण—मैं पूर्णतया सचेत हूँ। आप साथ न छोड़ाइये और छोड़ायेँ भी तो मैं छोड़े कब देता हूँ ?

राम—अच्छा; यही सही। मेरे तो दाहिने हाथ तुम्हीं हो।

(सीताजी का प्रवेश)

कौशल्या—बेटी ! मुझे बड़ा ही दुःख है कि सुख के समय ईश्वर ने तुम पर ऐसा वज्रपात किया। फिर भी समझ लो कि घबराहट में पड़कर अनर्थ न सोचना चाहिये।

सीता—माताजी ! आप स्वयं आर्यपुत्र से पूछिये कि मैंने किसके साथ विवाह किया था ?

कौशल्या—यह क्या बात है, बेटी ?

राम—माताजी ! इसी दिन का विचार करके मैं एकाएक धनुष उठाने में प्रवृत्त नहीं होता था। हाल तो आपको सब बतला चुका हूँ।

कौशल्या—हाँ, याद आया ; मैं भूल गई थी । इनके लिये तुम एक साधारण माण्डलिक-मात्र थे ।

राम—आर्ये ! मैं तुम्हें धोखा देना नहीं चाहता था, किन्तु वन-वास का विचार मुझे भी न था ? सोचो और समझो कि माताजी की गोदी में तुम्हें कौन-कौन से सुख नहीं मिले हैं और मेरी अनुपस्थिति में भी कौन-कौन नहीं मिलेंगे ?

कौशल्या—प्यारी बेटी ! जब जी चाहे यहाँ रहकर मेरे नेत्रों को शीतल करना; और जब चाहना, मायके चली जाना । तुम्हें कोई कष्ट न होगा । जंगल में जाना तुम्हारे लिये असम्भव है । उसके कष्ट तुम सह न सकोगी और जहाँ इस कोमल कुसुम के असमय कुम्हलाने का भी भय हो, वहाँ के लिये मेरा हृदय कैसे गवाही दे ?

सीता—क्या आर्यपुत्र बहुत कठोर हैं और मैं कोमलांगी ?

राम—इसमें सन्देह ही क्या है ? क्षत्रियों को जन्म से ही प्राणों की बाज़ी लगाने को तैयार रहना पड़ता है । क्या स्त्रियों ने भी कभी रणरंग जमाया है ? फिर तुम्हारी प्रकृति सदा से भीरु है । समझ लो कि तुम्हारे साथ होने से मेरी भी स्वच्छन्दता में कितनी बाधा पड़ेगी ?

लक्ष्मण—आत्मरक्षण के साथ आपकी रक्षा का भी प्रश्न सदैव उपस्थित रहेगा ।

सीता—जिस पौरुष ने बाल वय में ही घोर निशाचरों का शमन करके शैवपिनाक को एक तिनके से बढ़कर न माना था, वह क्या अब लुप्त हो गया है, जो रक्षा का इतना भारी भय सामने है ?

राम—समझ लो, बहुत कुछ पौरुष रखते हुये भी आँख ओट कुछ भी सम्भव है । फिर संसार में केवल मैं वीर नहीं हूँ, अन्य लोग भी हैं । जंगल में पहाड़, नदी, लू, निशाचर आदि सभी की बाधाएँ हैं ।

सीता—माताजी ! ये बातें मुझे विभीषिका-मात्र दिखती हैं । पति-सुश्रूषा स्त्री का सर्वोत्कृष्ट धर्म है, ऐसा स्वयं आप तथा अरुन्धती माता ने मुझे अनेक बार समझाया है ।

लक्ष्मण—अपनी शक्ति पर भी तो विचार कीजिये ।

सीता—अभी मुझे हुआ ही क्या है । कोई वृद्धता या निर्बलता का प्रश्न है नहीं, और यदि प्राण तक चले जायँ तो पति-चरणों पर वह भी ठीक है ।

राम—मेरी समझ में बिना सोचे विचारे ऐसे भारी प्रश्नों पर आतताईपन से निश्चय कर बैठना परिणाम में हम तुम दोनों को दुःखद हो सकता है ।

सीता—यदि आप समझें कि यहाँ रहकर मैं सुखी रहूँगी या चौदह वर्षों तक शरीर ही धारण कर सकूँगी, तो ऐसी ही आज्ञा दे दीजिये ।

राम—समझ लो, चित्त में धैर्य धारण कर सकने से सब कुछ सम्भव है ।

कौशल्या—बेटा ! उपदेश देने में भी ममझ लेना चाहिये कि उसका पालन ग्रहीता द्वारा सम्भव भी है ।

राम—अच्छा, यदि चित्त वश में नहीं आता, तब चलो; जो होगा देखा जावेगा । अपना गार्हस्थ्य प्रबन्ध ठीक कर लो; तब तक चलो पूज्य पिताजी तथा शेष दोनों माताओं की भी आज्ञा ले आवें ।

सीता—(कौशल्या से) माताजी ! मुझे बड़ा ही खेद है कि इस दीर्घ काल के लिये मैं आपकी चरण-सेवा से वंचित रहूँगी ।

कौशल्या—बेटी ! यह दशाओं का फल है, तुम क्या करो ?

(पटाक्षेप)

तीसरा दृश्य

स्थान—दण्डकारण्य ।

(चार निशाचरों का प्रवेश)

पहला निशाचर—यार, बहुत दिनों हम लोगों का मुलाकात ही नहीं होता है ।

दूसरा निशाचर—मुलाकात होगा कहाँ से, सेनापति खरदूषन ऐसा मोठा हुकुम जारी करता है कि बैठने का फुर्सत ही नहीं मिलता ।

तीसरा निशाचर—तुम तो सुना आजकल ब्याह करने का फ़िक्र में था ।

चौथा निशाचर—कैसा शादी चाहता है ?

दूसरा निशाचर—अरे बात यह है कि राजा इन्दर का अफ़्फ़रा तो हमारे लिये बैठा नहीं है, ऐसा औरत हो जो न बहोत ऊँचा हो न छोटोई में बावन का बहेन । बहुत गोरा मिलेगा नहीं, पर ऐसा काला भी न हो कि कोयले को लजाता हो ।

चौथा निशाचर—तुम भाई ज़रा भोंदू मालूम पड़ता है । थोड़ा डिङ्की (पैसा) खर्च करने से सब काम बन सकता है ।

पाँचवाँ निशाचर—क्या बेवकूफ़ है भाई जान ! अरे अगर हमी लोग डिङ्की फेंकैगा, तब लूट पाट कौन करैगा ? हम एक ऐसा बढिया शादी लाया था कि चम्पे के फूल को कुम्हला देता था ।

दूसरा निशाचर—खर्च क्या पड़ा था ?

पहला निशाचर—खर्च तुम्हारा ऐसा भोंदू करता है । (तलवार दिखाकर) हमारा डिङ्की यह है । अच्छा औरत निगाह भर में पड़ना चाहिये ।

(पाँचवें निशाचर का प्रवेश)

पाँचवाँ निशाचर—अरे हुशियार हो जावै यारों; एक सोने का चिड़िया नज़र आया है ।

पहला निशाचर—कहाँ है कहाँ ?

पाँचवाँ निशाचर—इधर ही आ रहा है; सब छिप जाओ । (सब इधर-उधर छिप जाते हैं । दो साथियों और एक स्त्री के सहित एक बटोही का प्रवेश ।)

बटोही—(साथियों से) यहाँ भाई कोई दिखता नहीं; किससे पूछूँ सिंहपुर कितनी दूर है ? (पाँचो निशाचर निकल आते हैं ।)

पहला निशाचर क्या सिंहपुर जाना चाहता है ? भला चाहै तो सब मालमता यहीं रख दे ।

बटोही—हाय गजब ! अगस्त्य ऋषि का आश्रम इसी ओर है और तुम लोग ऐसी लूट मचानेवाले हो ?

दूसरा निशाचर—अगस्त जलसेना रखता है ज़रूर, मगर थल पर हमारा सामना वह बेचारा क्या करेगा ?

बटोही—भाइयो, जो चाहो मुझसे ले लो किन्तु मेरी लड़की को मेरे साथ जाने दो ।

दूसरा निशाचर—तुम साला बड़ा सयाना बनता है । माल और शादी दोनों हमारा है । अब तुम जाता कहाँ है ? (बटोही और उसके दोनों साथी शोर मचाते हैं और लड़ने को तैयार होकर लाठी उठाते हैं । दो निशाचर उन्हें मार भगते हैं तथा निशाचर नं० २ स्त्री को खींच ले जाता है । पहला निशाचर माल असबाब लेता है ।)

तीसरा निशाचर—(पहले से) शादी उसे लेने दे, बाक़ी लोग माल बाँट लेगा ।

(पहले निशाचर का भी माल समेत प्रस्थान ।)

पाँचवाँ निशाचर—बहुत दिनों से मेढ़ा नहीं लड़ाया गया है ।

चौथा निशाचर—रुहै तो अभी मेढ़ा लावै ।

तीसरा निशाचर—ज़रूर लावे । (चौथा निशाचर बाहर जाकर एक अपना मेढ़ा लाता है और दूसरा मेढ़ा पाँच गाँव वल्ले लाते हैं । दोनों मेढ़े लड़ाये जाते हैं और गाँव वालों का जीतता है ।)

एक गाँववाला—शाबाश अब दोनों मेढ़े हमारे हैं ।

चौथा निशाचर—तेरा क्यों होगा, साला बदमाश कहीं का । हमारा मेढ़ा को चौंका दिया ।

गाँववाला—क्या यह भी कहोगे ?

तीसरा निशाचर—रुहेगा क्यों नहीं ? सच्चा तो बात है ।

गाँववाला—अच्छा, फिर लड़ा लेवो ।

पाँचवाँ निशाचर—फिर क्यों लड़ावेगा ? पहले चौंकाकर हमारा मेढ़ा डरा दिया और अब बात बनाता है ।

गाँववाला—किसने चौंकाया सरकार ! खुली खुली ज़बरदस्ती होती है ।

चौथा निशाचर—अगर ऐसा बदमाशी करेगा तो हम लात लगावेगा ।

गाँववाला—हम अपना मेढ़ा कभी नहीं दे सकते । (मेढ़ा लेकर चलते हैं । तीनों निशाचर उन्हें मार कर छीन लेते हैं । वे रोते हैं ।) "

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

स्थान—अयोध्या, केकयी के महल का मन्त्रणागार ।

(भरत और केकयी का प्रवेश ।)

भरत—हा ! अब मैं पितृ चरणों को यहाँ नहीं देखूँगा ।

केकयी—क्या कहूँ बेटा ! यह कौन जानता था कि इतनी सी मानसिक ठोकर से उनका शरीरपात ही हो जावेगा ।

भरत—आपकी ओर से स्वार्थपरता इतनी बढ़ी कि उसके आगे पतिभक्ति भी डूब गई । माना कि नानाजी ने मेरे लिये निबन्ध कर रक्खा था, किन्तु पहले कभी उसकी कोई बात तो न आई थी ।

केकयी—उनके शरीरान्त ने सब बातें बिगाड़ दीं । मैं मुख दिखलाने योग्य भी न रही । कुछ कहते नहीं बनता ।

भरत—दोष यों भी था, किन्तु कहने भर को भारी दोष चाहे न माना जाता । फिर भी यह स्वार्थियों की बात है ! कहाँ मैं और कहाँ ऐसे कार्य ?

केकयी—अब मैं भी यही सलाह दूँगी । (प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जैजै राजमाताजी ! साम्राज्ञीजी तथा गुस्वर पधार

रहे हैं । (केकयी का प्रस्थान और भरत का बाहर जाकर उन्हें सादर लाना । तीनों यथास्थान बैठते हैं ।)

कौशल्या—बेटा ! अब तुम अपनी ग्लानि छोड़ो । सब क्रिया कर्मादि सविधि हो चुके हैं; अब राज्य प्रदन्ध पर विचार आवश्यक है ।

गुरु वशिष्ठ—बाहर कुछ पौर जानपद प्रतिनिधि तथा सचिव सुमन्त भी प्रस्तुत हैं ।

भरत—उन सबको बोलाना चाहिये । (प्रतीहारी बाहर जाकर सबके साथ पलटता है । सब लोग प्रणाम करके यथास्थान बैठते हैं ।)

सुमन्त—कुमारजी । यह बात सब लोग समझते और जानते हैं कि माताजी के कामों में आपका मत न था । जो होना था सो हो गया । पिता ने राज्यपद आपको दिया है । राजा और पिता की आज्ञा अपेल होती है । अब आपको संकोच छोड़ना चाहिये ।

कौशल्या—मेरी भी सम्मति तथा आज्ञा यही है । यदि तुम ग्लानि-वश राज्यभार नहीं सम्हालते तो राजपरिवार और सारी प्रजा किसका मुख देखेगी ?

गुरु वशिष्ठ—राज्य को अधिकार समझना स्वार्थपरता है । यह भार है । आपसे विचारशील पुरुष को इससे हटना शोभा नहीं देता ।

एक पौर प्रतिनिधि (हाथ जोड़कर) अन्नदाता ! अब समय को देखते हुये सारी प्रजा की भी लालसा यही है कि आप राज्यभार अवश्य सम्हालें ।

भरत—यदि हंस के स्थान पर कौवा बिठला दिया जाय, तो क्या शोभा पावेगा ? सारी प्रजा के दादाजी कितने प्रिय थे कि न जाने कितने अयोध्यावासी बहुत समझाने-बुझाने पर भी उनके पीछे लगे रहे और अन्त में उन्हें चोरी से खोज मार कर रथ हँकवाना पड़ा ।

सुमन्त—ये बातें मेरी आँखों के सामने की हैं । फिर भी आपके ऊपर प्रजा की अणुमात्र अश्रद्धा नहीं है ।

एक जानपद प्रतिनिधि—(हाथ जोड़कर) यही बात है अन्नदाता ।

भरत—मैं आप सबको हृदय से धन्यवाद देता हूँ, फिर भी यदि पराये अधिकार छीनकर ही मुझे राजा होना पसन्द हो, तब भी इस अशुद्धाचरण के लिये क्या ज्येष्ठ बन्धु का ही राज्य रह गया है? सुदास के जीते हुये अन्यायी वर्चिन आदि के राज्य क्या प्रायः प्रबन्ध शून्य नहीं हैं ? उन्हीं पर निगाह उठाई जा सकती थी ।

कौशल्या—बेटा ! तुम्हारे ज्येष्ठ बन्धु चौदह वर्षों के लिये वन जा चुके हैं; अब यह राज्य सम्हाले बिना चलेगा कैसे ?

भरत—माताजी ! मेरी प्रार्थना है कि चित्रकूट चलकर उन्हें वापस लाया जाय ।

गुरु वशिष्ठ—साधु साधु; यह बात सबको पसन्द होगी । फिर भी आपके राज्य करने में कोई दोष न था ।

दूसरा प्रतिनिधि—दीनबन्धो । सम्राट् दशरथ के सुपुत्र तथा श्रीरामचन्द्र के भाई को जैसा होना चाहिये था, ब्रह्मा ने आपको वैसा ही बनाया है ।

(सबका प्रस्थान—पटोत्तोलन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—चित्रकूट ।

(सीता, राम और लक्ष्मण बैठे हैं ।)

लक्ष्मण—जब से हम लोग अयोध्या से इधर आये हैं, तब से पितृचरण के अमंगल के अतिरिक्त वहाँ का कोई समाचार नहीं मिला । आज न जाने क्यों आकाश में धूल जोर से उड़ रही है ।

सीता—केवल इतना ही नहीं, वरन् खग-मृग व्याकुलतापूर्वक इधर-उधर भागते हैं । न जाने कितने सारस मंडल बाँध-बाँध कर आकाश में उड़ रहे हैं ।

राम—बहुतेरे कबूतर, धँवर आदि हाँफते हुये उड़ते हैं, तथा

बराह, महिष आदि भी भागते हुये दिखते हैं। सब लक्षण किसी सेना के कहीं निकट होने के हैं। (एक किरात का प्रवेश)

किरात—जै जै मालिक। दीनबन्द ! आजु कौनिउ भारी सेना सुनो अजुध्या ते आइ रही है।

राम—किसकी है ?

किरात—कोई भरत भरत से कहात हैं, दीनबन्द ! मोहि कौन पूरो टिको है ? सुनी तैसी अर्ज करी। (किरात का प्रस्थान)

• लक्ष्मण—विचार में नहीं बैठता कि दादा भरत सेना लिये यहाँ क्यों आते हैं ?

राम—यही मैं भी सोचता हूँ। आगिर बात क्या है ?

लक्ष्मण—बात तो बिल्कुल स्पष्ट है। आप सभी को अपने ही समान धार्मिक तथा कर्तव्यपरायण मानते हैं; यह नहीं सोचते कि साधारण मनुष्य महत्व पाकर आपे को भूल बैठते हैं।

राम—वे चाहते क्या होंगे ? मैं स्वयं ही राज्य छोड़े बैठा हूँ। क्या पलटकर उसके लिये यत्नशील हूँगा ?

लक्ष्मण—क्यों, इसमें आश्चर्य ही क्या है, कम से कम उनकी समझ में ? वे थोड़े ही मानेंगे कि आप सदा के लिये ऐसे भारी साम्राज्य से हाथ धो बैठेंगे ?

राम—यदि छोड़ना न होता तो वहाँ से मुझे खदेड़ ही कौन सकता था ?

लक्ष्मण मैं समझता हूँ कि जिस दल के बल पर वे अपने राज्य को अकंटक करने आते हैं, वही आपके एक बार सामने खड़े हो जाने से उन्हीं पर बाज के समान टूटेगा। तब पता पड़ेगा कि बन्धु-विरोध कैसा होता है ?

सीता—क्यों, आप क्या चाहते हैं ?

लक्ष्मण—जिस कुटिलता से प्रेरित होकर वे दोनों भाई आ रहे हैं, उसका फल समरभूमि में चखा दूँगा।

राम—क्या इतना घोर बन्धु-विरोध तुमसे होगा ?

लक्ष्मण—वे क्या करने आ रहे हैं ?

सीता—सम्भव है कि वापस ले जाने को आते हों ।

लक्ष्मण—सम्भव है कि पीठ पर गुड़ मलने आते हों ।

राम—अविश्वास के लिये तुम्हारे पास प्रमाण क्या है ?

लक्ष्मण—यदि भले इरादे से आते होते, तो सेना की क्या आवश्यकता थी ?

सीता—जब ज्ञानानी सवारियाँ साथ होंगी, तब छुरीदा क्या नटों की भाँति चल देते ? कुछ सेना रक्षा तथा रूप रखने को लानी ही पड़ती ।

लक्ष्मण—यह भी सम्भव है, किन्तु मुझे निश्चय नहीं पड़ता ।

राम—(सीता से) तो प्रिये तुम्हारा विचार है क्या ?

सीता—मेरा मन भलाई की ओर झुकता है ।

राम—मुझे ऐसा दिखता है कि चाहे सौर किरणों से हिम बरसे, चाँद से आग टपके, तेल और रुई से पावकधन्ध बुझ जाय, गंगाजी बिना मानुष-प्रयत्न के पूरब से पच्छिम की ओर बहने लगें, तथापि भरत में स्वार्थान्धता न होगी ।

लक्ष्मण—यह भी सम्भव है; देखूँ घटनाचक्र किसके विचारों की सत्यता प्रमाणित करता है ? (गुह निषादपति का प्रवेश)

गुरु—जै जै राजकुमार ! भाई भरत दर्शनार्थ उपस्थित हो रहे हैं । गुरु वशिष्ठ, सचिव लोग, राजपरिवार तथा बहुतेरे मुख्य-मुख्य अयोध्यावासी भी साथ हैं ।

राम—(उठकर तथा निषादपति को हृदय से लगाकर बिठलाते हैं ।) भाई निषादपति ! इतनी शीघ्रता क्यों की ?

गुह—वे भी तो आपही के भाई दशरथ-नन्दन हैं । कच्ची बात मुख से क्या निकालूँ, पहले सेना देखकर मुझे उनकी क्रूरता का संदेह हो गया था और अन्दर ही अन्दर मैं युद्धार्थ प्रस्तुत था, किन्तु पीछे से अपनी भूल समझी ।

सीता—(लक्ष्मण की ओर मुस्कराकर गुह से) आपका कोई अनुचित व्यवहार प्रकट तो नहीं हुआ था ?

गुह—इतनी लाज परमेश्वर ने रख ली, अन्नदात्री !

राम—बहुत ही अच्छा हुआ ।

(भरत और शत्रुघ्न का प्रवेश । वे दोनों सीताराम को दंडवत करते हैं । शत्रुघ्न लक्ष्मण को भी दंडवत करते हैं । ये तीनों उठकर प्रेमपूर्वक उनका स्वागत करते हैं । लक्ष्मण भरत को प्रणाम करते हैं ।)

• भरत—हाय दादाजी ! क्या कहूँ, पूज्य पिता के दर्शन अब न होंगे । अयोध्या के समाचार आपको मिल ही गए हैं ।

राम—हम लोग शुद्ध भी हो चुके हैं । क्या कहें, बड़ा ग़ज़ब हो गया । (गुरु, वशिष्ठ और तीनों माताओं का प्रवेश । सीता, राम और लक्ष्मण आगे बढ़ते हुए उठकर सबको प्रणाम करते तथा सबके साथ योग्य आसनों पर बैठते हैं !)

भरत—इतने भव्य समाज में छोटे मुँह बड़ी बात कहनी शोभा तो मुझे नहीं देता, फिर भी समय को देखकर बिनती करता हूँ ; आशा है कि क्षमा किया जाऊँगा ।

राम—अवश्य कहो ।

भरत—अयोध्या में आपका वनवास तथा पिता का स्वर्गवास जो हुये, इनका मूल कारण प्रत्यक्ष मैं हूँ । यह आपकी महत्ता है कि ऐसे दोषी से भी प्रेमपूर्ण व्यवहार करने की कृपा करते हैं ।

राम—इतनी आत्मग्लानि के पात्र अपने को एकाएकी समझ लेना क्या आततायीपन न होगा ?

कौशल्या—यही मैं भी कह रही हूँ, किन्तु बिना तुम्हारे सुख का आश्वासन पाये शायद इन्हें उचित ही सन्तोष नहीं है ।

भरत—मेरा कथन केवल आश्वासन-प्राप्ति की युक्ति न होकर वास्तविक है ।

राम—वास्तविक तब कहा जाता जब तुम भी माताजी के मत में होते ।

भरत—भला ऐसी भी कोई माता होगी जो पुत्र के लिये सर्वस्व भी खोने को प्रस्तुत न हो ?

राम—यह तो सत्य ही है ।

भरत—क्या यह मेरा कर्तव्य न था कि अपने आचरण द्वारा माताजी पर पहले ही से पूर्णतया प्रकट रखता कि मैं ज्येष्ठ बन्धु का अधिकार किसी अवस्था में सोते जागते नहीं ले सकता ? ऐसा इन पर प्रकट रहने से यह विपदा काहे को आती और सारी प्रजा तथा राज-वंश क्यों त्राहि-त्राहि करते होते ?

वशिष्ठ—बेटाजी ! आपके उच्च विचारों के आगे साधारण मनुष्यों की बुद्धि काम नहीं करती ।

राम—भला ऐसे विषयों पर पहले ही से कौन सज्जन बात करता रहता है ? ये स्वार्थियों के ढंग हैं । यदि तुमने इस विषय पर कभी ध्यान ही नहीं दिया, तो इसमें भी तुम्हारी महत्ता है ।

सुमित्रा—यही बात है । स्वार्थपरता और ये योजनाएँ दूर बसते हैं ।

भरत—फिर भी जिसका पूज्य मस्तक राजमुकुट से सुशोभित होना था, उस पर जटा भार देखकर कौन सुधी हतप्रज्ञ न हो जायगा ? मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि जो हो गया सो फेरे फिरता नहीं, किन्तु अब पलभर के लिये भी दादाजी को सिंहासन सूना न रखना चाहिये । अभिषेक के लिये सारा सामान प्रस्तुत है ही, इसी समय कार्य सम्पन्न क्यों न कर दिया जाय ?

राम—अभी तुम्हीं ने कहा है कि जो हो गया वह फेरे नहीं फिर सकता । क्या मेरा सिंहासनासीन होना इसी कथन के प्रतिकूल नहीं पड़ता ?

भरत—यह कथन तो मैंने पितृचरणों के विषय में किया था ।

राम—लागू यह दोनों बातों पर है । जिस पिता ने पुत्र को छोड़ सत्य का पालन किया और शरीर तज कर पुत्र-प्रेम की सीमा प्रकट की, उसके वचन भेटने की शक्ति किस सुयशी पुरुष में हो सकती है ?

भरत—यह वचन प्रसन्नतापूर्वक नहीं दिया गया था ।

राम—हम लोगों के जन्म के पूर्व ही वह प्रसन्नतापूर्वक दिया जा चुका था । तुम्हारे तिलकोत्सव के प्रतिकूल पिताजी को अगुमात्र संकोच न था । मानसिक संकट मेरे वनवास के विषय पर हुआ ।

भरत—राज्य आपका पिता-पितामहादि के समय से चला आता था । पितृचरण को यथारुचि उसे किसी को दे डालने का अधिकार ही कब था ?

राम—यदि वे इस महाजनपद की रक्षा न किये होते, तब पितामहादि का यह अधिकार स्थाई कैसे रहता ?

भरत—पितृचरण से इसकी रक्षा असम्भव होने से बात ही और होती, किन्तु किसी अशक्तता का प्रश्न यहाँ है कहाँ ?

राम—फिर भी स्वशक्ति द्वारा रक्षित वस्तु वे किसी की दे सकते थे । विवाह के पूर्व निबन्ध भी हो गया था ।

भरत—निबन्ध से अन्य वस्तुएँ दी जा सकती थीं, किन्तु पितामहादि का राज्य नहीं । उचित उत्तराधिकारी का अधिकार विवाहादि द्वारा छिन नहीं सकता ।

राम—इसमें मतभेद सम्भव है । क्या आप समझते हैं कि राज्यलोभ से मैं पिता के अधिकारों पर दंश दूँगा ?

भरत—क्या अधिकारशून्य दान के लिये मैं हाथ बढ़ा सकता हूँ ? माना कि आप पितृचरण के अधिकारों के प्रतिकूल कुछ नहीं कह सकते, किन्तु जब राज्य का कोई दूसरा उत्तराधिकारी है ही नहीं, तब वह मिलेगा किसे ।

राम—मिलेगा उसे जिसे पूज्य पिता ने दिया है ।

भरत—उसने चाहा कब था ?

राम—फिर भी पिता की आज्ञा मेटने का किसे अधिकार है ?

भरत—दाता यदि कोई वस्तु किसी को दे और ग्रहीता ले ही नहीं, तो वह किसकी रही ?

राम—रही तो दाता ही की, किन्तु राजाज्ञा का भी यहाँ प्रश्न है ।

भरत—देने में कोई आज्ञा नहीं, वह केवल इच्छा की बात है ।

राम—मैं ऐसा समझता नहीं ।

भरत—मैं तो समझता हूँ ।

राम—मेरी समझ में आप आज्ञाभंग का पाप करते हैं ।

भरत—अपनी समझ में तो करता नहीं, किंतु यदि आपकी सम्मति ठीक हो, तब मुझे पापी होना पसंद है, किंतु ज्येष्ठ बंधु के अधिकार नरक-भय से भी न छीनूँगा ।

(सारी सभा साधु साधु करती है ।)

राम—गुरुवर ! अब आप कहिये कि भाई भरत के कथनों में क्या कोई हठवाद नहीं ?

वशिष्ठ—मैं हठ के स्थान पर उनमें पूर्ण महत्ता देखता हूँ । मुँह पर कहते बनता नहीं, किंतु ऐसा पुण्यात्मा राजपुरुष आपको छोड़कर मेरे देखने में तो आया नहीं ।

राम—ये अभी बच्चे हैं, ऐसी ऊँची बातों पर शुद्ध निर्णय नहीं कर सकते । इसमें माताजी की आज्ञा क्या है, सो भी समझनी चाहिए ।

केकयी—बेटा ! तुम्हारी अभिलाषाएँ और धार्मिक विचार बहुत ऊँचे हैं । मुझे भारी खेद है कि महात्माओं के इस वंश में जीवन बिताकर भी मुझसे स्वार्थोपता का पतित कर्म हो गया । अब तुम मेरी ओर से सारी ग्लानि छोड़कर अपना अधिकार सम्हालो । मेरा अपराध क्षम्य तो है नहीं तथापि नत मस्तक होकर मैं अपनी दोनों सपत्नियों, चारों बेटों तथा प्रजावर्ग से क्षमा की प्रार्थिनी हूँ ।

राम—माताजी ! यह भवितव्यता की बात थी । आपने कभी कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया । राज्य माँगना भी आपके लिये अयोग्य न था ।

वशिष्ठ—केवल तुम्हारे वनवास की बात इनसे अनुचित हो गई ।

केकयी—गुरुवर ! यह मामला आपाद मस्तक अनौचित्य से भरा है । सौन्दर्य के दाम माँगना भी क्या ऊँची बात है ?

वशिष्ठ—रानी ! अब इन पुरानी बातों पर पश्चात्ताप मत करो । वह केकय महाराज से निबन्ध हुआ था, आपने तो कुछ माँगा न था ।

राम—यही बात है माताजी !

भरत—इन्हें मुझ अभागे की माता होने से ही कलंक-भाजन होना पड़ा ।

राम—अब इन बातों को छोड़ दो, जो हुआ सो हो ही चुका । पितृचरण वापस आते नहीं । अब भविष्य की बातें करो ।

भरत—बातें सब हो ही चुकीं, दादाजी ! अब मुझ दास पर अनुग्रह करके सिंहासनासीन होकर राजमुकुट धारण कीजिये ।

राम—किन्तु वनवास की आज्ञा क्या इसकी बाधिका नहीं ? माना कि तुम राज्यदान नहीं लेते, जिससे वह भार मुझ पर आ ही जाता है, किन्तु चौदह वर्षों तक क्या हो ?

भरत—मैं समझता था कि आप राज़ी हो चुके हैं ।* यह पचड़ा क्या उठा रहे हैं ? (पैरों पड़कर) अब दादाजी ! मान ही जाइये; देखिये आपने कभी मेरी इच्छा नहीं तोड़ी है ।

राम—(भरत को उठाकर) समझो तो सही । पिता की आज्ञा मेटनेवाला आज दिन अयोध्या में कौन है ? किसका सामर्थ्य है कि जगद्विजयी सम्राट् दशरथ का अन्तिम आदेश तोड़ दे ?

भरत—प्रत्येक राजा अपने पूर्ववर्ती की आज्ञाओं पर नीतिपूर्वक विचार कर सकता है ।

राम—राजा इस समय है कौन ?

भरत—राजा हैं आप ।

राम—तो मैं उस आज्ञा को अणुमात्र पलटने को तैयार नहीं हूँ ।
(सब लोग साधु-साधु कहते हैं ।)

भरत—हाय, तब क्या हो ? क्या फिर भी इस महाजनपद के सुदिन न बहुरेंगे ?

राम—इसकी शक्ति आप में नहीं है। यदि आप राजा हों, तो मैं आपका राज्य लेने से इनकार करता हूँ; और यदि मैं राजा हूँ, तब पिता की आज्ञा न बदलेगी।

कौशल्या—हाय बेटा ! यह क्या कह गये ? कुछ अपने भाई भरत, सारे प्रजावर्ग, मेरी बहू और बेटा लक्ष्मण का भी ध्यान है ? क्या मैं चौदह वर्षों के पीछे तुम्हें देखने को बैठी रहूँगी ?

राम—माताजी ! आपने कभी धैर्य नहीं छोड़ा है; अब भी मत छोड़िये। जब पूज्य पितृचरण उठ गये, तब उस प्रेमी पिता की अन्तिम आज्ञा कौन टाल सकता है ? गुरुवर आप ही कहिये।

वशिष्ठ—शास्त्रीय। रीति से आपको अधिकार है ही, किन्तु सम्राट् के शोचनीय शरीरपात ने इस मामले में पितृभक्ति का भी प्रश्न जोड़ दिया है।

राम—जिस पिता ने शरीर तक त्याग दिया, किन्तु अपनी विवशतापूर्वक दी हुई आज्ञा न बदली, उसे भला मैं कैसे बदल सकता हूँ ?

भरत—इस भारी राज्य का प्रबन्ध भी तो देखिये।

राम—प्रबन्ध संचालनार्थ मैं तुम्हीं को चौदह वर्षों के लिये सूर्यकुल का पालक नियत करता हूँ। जिस दिन अयोध्या से चला था, उससे पन्द्रहवें वर्ष के ठीक पहले दिन वहीं पर हूँगा।

भरत—किन्तु दादाजी ! इतना भारी कार्य मेरा चलाया न चलेगा।

राम—यह बात तुम्हारे विचाराधीन नहीं। मैं यही आज्ञा दे रहा हूँ।

भरत—हा दैव ! क्या सोचिये और क्या होता है ? हे ईश्वर ! तेरी लीला अपरम्पार है। अच्छा, आज्ञा तो आपकी माननी ही रहेगी, किन्तु सिंहासन पर रखने को अपनी पादुकायें दे दीजिये।

राम—बहुत ठीक है। चित्रकूट पुण्यस्थल है। तुम घूम-घूमकर यहाँ के सब मुख्य स्थानों के दर्शन कर लो, तथा तीर्थों का जल उस कुयें में डाल दो जो अब से भरतकूप कहलायेगा।

भरत—जो आज्ञा।

(पटाक्षेप)

छुठा दृश्य

स्थान—लंका, मेघनाद के घर का कमरा।

(मेघनाद तथा अक्षयकुमार का प्रवेश)

अक्षयकुमार—दादाजी! आजकल अपने चौगान का दल अच्छा है न ?

मेघनाद—क्यों नहीं ? क्या किसी बाहर के दल से खेलने की इच्छा है ?

अक्षयकुमार—दादा नलकूवरजी एक चौगान-दल यक्षों का लाये हैं, और अपने दल से खेलना चाहते हैं।

मेघनाद—क्या हर्ज है ? उधर से कौन-कौन खेलेगा ? घोड़े अच्छे याबू लाये होंगे ?

अक्षयकुमार—लाये तो अच्छे हैं। अपने भी चौगानवाले जानवर बढ़िया हैं ही। खेलनेवालों का अभी पूरा पता नहीं है।

मेघनाद—नलकूवरजी कदाचित् खेलेंगे।

अक्षयकुमार—इसमें क्या सन्देह है। दो अन्य यक्ष सरदार खेलेंगे, और आश्चर्य है कि चाचा विभीषणजी चौथे खिलाड़ी हैं।

मेघनाद—इसमें आश्चर्य क्या है ? वे ताऊ कुवेरजी के सेनापति थे ही।

अक्षयकुमार—यह भी ताजुब की बात है। जिस विमात्र भाई से पिताजी ने निशाचरों से जीती हुई लंका छीनी थी, उसी के सेनापति वे हुए कैसे ?

मेघनाद—वे पिताजी के पूरे सहायक थे कब ? मैं तो उन्हें छिपा हुआ भ्राता-द्रोही समझता हूँ ।

अक्षयकुमार—फिर जो नाता पिताजी से है वही कुबेर से भी तो है ।

मेघनाद—यह क्या कहते हो ? इनके पिता और नाना दोनों एक ही एक व्यक्ति थे । उधर ताऊ कुबेर की माता आर्य महिला थीं । पिताजी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के ऐसे पक्षी हैं कि उन्हें शत्रु के सेनापति भी बनने दिया ।

(एक परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—जै-जै युवराज महोदय ! रानी सुलोचना ने आज्ञा दी है कि वे अभी दर्शन देना चाहती हैं ।

मेघनाद—(हँसकर) अवश्य दें ।

(परिचारिका का प्रस्थान, सुलोचना का प्रवेश)

आइये रानीजी ! पधारिये ।

सुलोचना—जी नहीं, मैं कभी न आऊँगी ।

मेघनाद—आखिर क्या बात है ?

सुलोचना—जहाँ कोई पूछनेवाला न हो, वहाँ जाने से लाभ ?

मेघनाद—पूछा कैसे जाता है ?

सुलोचना—इतनी देर से चौगान की बातें हो रही हैं, किन्तु मेरा स्मरण क्यों होने लगा ?

अक्षयकुमार—भाभीजी ! क्या आप भी खेलेंगी ?

मेघनाद—ये बेचारी ऐसे खेल में क्या खेलेंगी, किन्तु जानते नहीं कि देखने का बड़ा शौक है ?

सुलोचना—अच्छा, अपनी ओर से कौन-कौन खेलेगा ?

मेघनाद—अक्षयकुमार खेलें होंगे और मुझे भी खेलना होगा । शेष दोनों में मकराक्ष और महोदर शायद चुने जायँ ।

सुलोचना—महोदर बेचारे वृद्ध हो रहे हैं; कुम्भ निकुम्भ में से चाहे जिसको चुन लिया जाय ।

अक्षयकुमार—यही बात है; भाई निकुम्भ ठीक होंगे, कुम्भ ज़रा मोटे अधिक हैं।

सुलोचना—आखिर दो में से एक भाई पिता को पड़ा ही चाहे।

मेघनाद—वे तो छुः महीनों तक सोते से रहते हैं; उधर बेचारे कुम्भ परिश्रम से पीछे नहीं हटते।

सुलोचना—मेहनत से काकाजी भी कब दबते हैं? जाग भर पड़ें फिर युद्धादि में किसी का भी सामना कर सकते हैं।

• मेघनाद—कर सकने की क्या बात है? सारी दुनिया जीते बैठे ही हैं।

सुलोचना—नरान्तक को क्यों नहीं चुनते? वे भी बहुत अच्छे खेलाड़ी हैं।

मेघनाद—वे किसी से कम नहीं हैं, मकराक्ष के स्थान पर लिये जा सकते हैं।

अक्षयकुमार—फिर भी हमीं तीनों भाइयों का होना बहुत ठीक नहीं, उधर मकराक्ष भी कुछ कम खेलाड़ी नहीं हैं।

(परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—जै-जै ! साम्राज्ञीजी पधार रही हैं।

(सब लोग बाहर जाकर आदर से लातें हैं।)

मेघनाद—(सेवक से) अरे कुछ आसन जल्दी लाओ (परिचारक लोग सात आठ आसन रखते और सब लोग बैठते हैं।)

(माता से) आज अनायास घर बैठे दर्शन मिल गये।

मन्दोदरी—सुना चौगान होनेवाला है, कौन-कौन इधर से खेलेगा ?

सुलोचना—माताजी ! इन दोनों के अतिरिक्त मकराक्ष और निकुम्भ चुने गये हैं।

मन्दोदरी—दल तो अच्छा चुना गया है।

सुलोचना—मैं समझती हूँ कि आप भी पधारेंगी

मन्दोदरी—इसमें क्या सन्देह है ? सम्राट् भी विराजेंगे । अभी यहाँ भी पधारनेवाले हैं ।

सुलोचना—बड़ी कृपा होगी । कोई विशेष बात तो नहीं है ?

मन्दोदरी—सो वही जानें ।

मेघनाद—वहीं क्यों न बोला लिया ? इतना कष्ट क्यों ?

मन्दोदरी—अरे यह स्थान भी है किसका ? एक ही जगह वे सदा नहीं बैठते ।

(परिचारिका का प्रवेश)

परिचारिका—सम्राट् पधार रहे हैं । (सब लोग बाहर जाकर आदर से लाते और यथास्थान बैठते हैं ।)

रावण—आजकल बेटा ! कुछ दुष्प्रबन्ध-सा सुन पड़ता है ।

मेघनाद—किधर देव ! लंका में शायद कोई गड़बड़ है नहीं ।

रावण—अपने टापू भर में निशाचर ही निशाचर हैं, सो किसी पर कोई अत्याचार हो नहीं सकता । उधर दक्षिणी भारत में आर्यों की भी थोड़ी जनता है ।

अक्षयकुमार—क्या उसी पर कोई अत्याचार हुये ?

मन्दोदरी—सुन ऐसा ही पड़ा है ।

सुलोचना—क्या काका खर महोदय ने उसे नहीं रोका ?

रावण—उनका इस ओर ध्यान कम है । निशाचरों पर पूर्ण दया रखते हैं, किन्तु आर्यों को पराये समझते हैं ।

मेघनाद—क्या बड़े नानाजी भी कुछ नहीं बोलते ?

मन्दोदरी—जब से नाना मालीजी महाराज का कुवेर द्वारा वध हुआ और मँझले नाना इन्द्रवाले संग्राम में काम आये, तभी से अन्य बातों में बड़े कृपालु होकर भी वे आर्यों पर अप्रसन्न से रहते हैं ।

मेघनाद—यह तो ठीक बात है । अच्छा, मैं पूछता हूँ कि उन पर धार्मिक हस्तक्षेप किया ही क्यों जाता है ? इसमें क्या हानि है कि वे अपने धर्म पर चल सकें, और हम अपने पर चलते ही हैं ?

मन्दोदरी—यदि यज्ञ विध्वंस का मामला न होता, तब महर्षि विश्वामित्र को क्या पड़ी थी कि हमारे उत्तरी उपनिवेश के प्रतिकूल यत्नवान होते ?

मेघनाद—मैं यहाँ तक कहूँगा कि धार्मिक बखेड़े न उठते रहने से हमारा वह उपनिवेश अब तक हरा-भरा रहता ।

रावण—इतना दबकर काम करने से राज्य ही कितने दिन चलेगा, और ऐसे राज्य से लाभ ही क्या है ?

मन्दोदरी—इसे मैं दबना नहीं समझती । यहाँ तो साधारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रश्न है जिसे आप भी बहुत पसन्द करते हैं ।

मेघनाद—यदि अपने धर्म पर कोई रोक टोक करे, तब लड़ मरने तक को हमें तैयार रहना चाहिए, किन्तु दूसरों पर अनुचित हस्तक्षेप से बैठे-बिठाये लड़ाई मॉल लेने से क्या लाभ ?

रावण—इतना बल लगाकर कभी तुम लोगों ने मुझसे यह बात कही न थी । अब तक बहुत करके तुम्हारे काका खर और मारीच की नीति उधर चलती रही ।

सुलोचना —पिताजी ! समय पर यह प्रश्न सोचने योग्य है ।

रावण—अच्छी बात है, बेटी ! किसी सुअवसर पर उचित आज्ञा निकाल दी जायगी । (प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—जै जै सम्राट् ! महर्षि अगस्त्यजी बाहर प्रस्तुत हैं !

रावण—उन्होंने मिलने को आज समय भी स्थिर कराया था; क्या बोलाऊँ ?

अज्ञेयकुमार—वे आर्य-द्राविड़ मेल का प्रश्न उठा कर घड़ियों बातें करेंगे, और फल कुछ भी न निकलेगा ।

रावण—तो हानि ही क्या है ?

अज्ञेयकुमार—पिताजी ! आज चौगान होने को है ।

मन्दोदरी—क्या इतना बड़ा राजकीय प्रश्न भी चौगान के आगे तुच्छ है ?

रावण—मैं समझता हूँ कि विशेष समय न लगेगा। मामला निर्णीत हो जावेगा, और इनका चौगान भी सध जायगा।

मेघनाद—आप भी तो उसे देखनेवाले हैं ?

रावण—अवश्य अवश्य।

मेघनाद—अच्छा, फिर बोलना न लीजिये उन्हें भी।

रावण—(प्रतीहारी में) अरे जा, ऋषिवर को आदर पूर्वक भेज दे। (प्रतीहारी का प्रस्थान, अगस्त्य ऋषि का प्रवेश। सब अभ्युत्थान करते और प्रणाम करते हैं। ऋषिवर आर्शवाँद देते और सब के साथ बैठते हैं।)

अगस्त्य—सम्राट् प्रवर ! आशा है कि आप सकुटुम्ब स्वस्थ और सकुशल होंगे।

रावण—ऋषिवर ! हम लोग बहुत मज़े में हैं। आपका शरीर तो स्वस्थ है, और आश्रम में कोई कष्ट तो नहीं है ?

अगस्त्य—आपकी कृपा से सब ठीकठाक है। अब यदि आज्ञा हो तो उस विषय का उठाऊँ जिसके लिये आपको कष्ट दिया है।

रावण—कष्ट तो आप ही ने विशेष किया है। हाँ, कहिये क्या आज्ञा है ?

अगस्त्य—मैं यही चाहता था कि द्राविड़ों से जो आर्यों की मनमैली है, वह किसी प्रकार से दूर हो जाती तो अच्छा था।

रावण—अच्छा अवश्य था, किन्तु आक्रमणकारी आर्य ही हैं, द्राविड़ नहीं।

अगस्त्य—यह इतिहास की बात है राजन् ! अब तो प्रायः पन्द्रह सै वर्षों से ये दोनों जातियाँ इसी भारतवर्ष में रहती हैं।

मन्दोदरी—ठीक ही है, ऋषिराज !

अगस्त्य—वैवाहिक सम्बन्ध भी इतनी अधिकता से हो रहे हैं कि स्वयं सम्राट् रुपये में आठ आने आर्य हैं।

मन्दोदरी—इसकी कहाँ तक सोचियेगा; स्वयं मेरा बेटा बारह

आने आर्य है और मैं पूरी सोलहो आने । फिर भी इतना मानना ही पड़ेगा कि हम लोग द्राविड़ शक्ति के नेता हैं !

अगस्त्य—इससे मैं कब इनकार करता हूँ, किन्तु इतनी बात भी है कि यह कुटुम्ब एक प्रकार से द्राविड़ों और आर्यों में मध्यस्थ है । यदि आप चाहें तो यह पुराना बखेड़ा शान्त हो सकता है ।

रावण—मैं स्वयं वैशाल कुलोद्भव सूर्यवंशी हूँ ही ।

अगस्त्य—इतना ही क्यों, आपके पितामह पुलस्त्य ऋषि की षाणना वज्र वारकों में है, तथा पिता वैश्रवण स्वयं प्रजापति थे ।

रावण—किन्तु उन्होंने मेरी सहायता क्या की ? मुझे जो कुछ बल प्राप्त हुआ सो मातामह के कुल से ।

अगस्त्य—उन्होंने कुबेर ही की क्या सहायता की ? जिसमें जितनी महत्ता थी उसने उतना पद प्राप्त किया ।

मन्दोदरी—सो तो सत्य है, किन्तु इतना मानना ही पड़ेगा कि यज्ञों ने नानाजी के राज्य पर अनुचित आक्रमण करके लंका तक छीन ली ।

अगस्त्य—उसे आपने वापस ले ही लिया । इसकी कोई शिकायत तो नहीं करता ?

रावण—अब आप क्या चाहते हैं ?

अगस्त्य—आप लोगों का असली देश दक्षिण है । उस पर आप का अधिकार अद्यावधि अक्षुण्ण-सा है ही ।

रावण—आपका प्रयोजन शायद यह है कि आर्यों ने जो उत्तरी भारत जीता, वह हमारा नहीं वरन् कोलों का था ।

अगस्त्य—यही बात है । आप लोगों से आर्यों की कोई वास्तविक शत्रुता नहीं है ; केवल आचरण सम्बन्धी कुछ बखेड़े हैं ।

रावण—है मूलतः यही बात । अच्छा आप चाहते क्या हैं ?

अगस्त्य—वास्तव में बात थोड़ी सी है । सिद्धान्त रूप से स्वयं आप स्वतन्त्रता के भारी सहायक तथा वेद के प्रेमी हैं । उसी वैदिक मत से विरोध क्या द्राविड़ों को शोभा देता है ?

मन्दोदरी—इस विषय पर स्वयं मैंने तथा युवराज ने आज ही सम्राट् से निवेदन भी किया था ।

रावण—इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है । यह सिद्धान्त का न होकर केवल प्रबन्ध का प्रश्न है । सब निशाचर ऐसा मानते अवश्य नहीं ।

मेघनाद—उन्हें समझा-बुझाकर तथा डाट-डपटकर सुमार्ग पर लाना होगा ।

अगस्त्य—दूसरा प्रश्न लूटमार तथा स्त्रियों आदि के छीनने का है ।

रावण—यह भी प्रबन्ध ही का प्रश्न है, सैद्धान्तिक नहीं ।

अगस्त्य—तब फिर एक ही बात रह जाती है, अर्थात् नर-भक्षण की ।

रावण—है यह भी सिद्धान्तरूपेण असम्भव नहीं, किन्तु इसे कार्य में सफलतापूर्वक लाना ज़रा टेढ़ी खीर है ।

अगस्त्य—क्यों, ऐसा क्यों है ?

रावण—ऋषिवर ! कहते हैं कि नर-मांस में ईश्वर ने वह स्वाद दिया है कि जो कोई एक बार भी इसे चखता है, उससे इसका छूटना कठिन है ।

मेघनाद—उधर सारे-के-सारे साधारण निशाचर पीढ़ियों से इसका सेवन करते चले आते हैं । उनके द्वारा इसका त्याग असम्भव-सा है ।

अगस्त्य—किन्तु इसमें न्याय-पथ से कितना भारी विरोध है, सो स्वयं आप समझ सकते हैं ।

रावण—क्या कहूँ ? यह तो इनके छोड़े न छूटेगा । यह लोग दूर दूर रहे, दक्षिण कोशलपति स्वयं कल्माषपाद निशाचरों की संगति-मात्र से नर-मांस भक्षण करने लगे हैं । उन्हीं से ज़रा छोड़वा दीजिये ।

अगस्त्य—उन्होंने तो वशिष्ठ ऋषि के प्रयत्नों से इसे छोड़ दिया है । क्या आपको इसका पता नहीं है ?

रावण—मुझे तो पता है नहीं, किन्तु जब आप कहते हैं, तब छोड़ ही दिया होगा; तथापि निशचरकुल से ऐसी आशा नहीं हो सकती। आप शायद जानते ही होंगे कि उच्चक्रोष्टि के निशाचर ऐसा नहीं करते, और बहुत करके केवल साधारण लोगों में इसका प्रचार है।

अगस्त्य—तो आज्ञा निकाल क्यों नहीं दी जाती ?

रावण—इसमें उन लोगों को अपने ऊपर अत्याचार समझ पड़ेगा। अन्त में यथा प्रजा तथा राजा की बात चलती ही है।

अगस्त्य—चात तो यथा राजा तथा प्रजा की सुनने में आई है।

रावण—वह कथन निरंकुश राजाओं से सम्बद्ध है। हम लोग स्वतन्त्रता प्रेमी विशेष होने से प्रजा की सम्मति का निरादर कम करते हैं।

अगस्त्य—जब तक आपकी प्रजा यह आदत नहीं छोड़ती, तब तक आपों से मेल असम्भव है। जिसके भाई-भतीजों को पकड़कर खा जायेंगे, वह शत्रुता कैसे छोड़ेगा ? सिद्धान्तरूपेण प्रजा का मान ठीक है, किन्तु महाघोर अनौचित्य में नहीं।

रावण—यह मैं भी समझता हूँ, किन्तु करूँ क्या ?

अगस्त्य—समझ लीजिये, कोई आर्य आपका राज्य नहीं छोड़ाना चाहता, किन्तु मनुष्य-भक्षण ऐसा बुरा काम है जिसके प्रतिकूल हमारा प्रयत्न कैसे छूट सकता है ?

सुलोचना—(रावण से) पिताजी ! नरभक्षण में अत्याचार का प्रश्न आता ही है।

रावण—आता तो, बेटी ! अवश्य है, किन्तु क्या तुम्हें समझ पड़ता है कि इसका छूटना सम्भव है ?

सुलोचना—सो तो नहीं है।

रावण—तब फिर ऋषिजी से भूठा वादा कैसे किया जाय ?

सुलोचना—अच्छा, ऋषिवर ! मैं पूछती हूँ कि स्वयं आपने आतापी और वातापी का विनाश क्यों किया था ?

अगस्त्य—मैं उनसे कब लड़ता था ? स्वयं उन्होंने निमन्त्रण देकर भोजन के पीछे ही धोखे से युद्ध ठान दिया, जिसमें वे ही पराजित भी हो गये ।

मुलोचना—अच्छा, आपकी सहधर्मिणी वैदर्भी लोपामुद्रा ने काशिराज प्रतर्दन के पौत्र अलर्क को विजयार्थ आशीर्वाद क्यों दिया ?

अगस्त्य—आशीर्वाद देना हम ऋषियों का काम ही है । स्वयं आप यदि शुद्ध सत्यता के रत्नक बनें, तो क्या हम आपको जी से विजय का आशीर्वाद न देंगे ?

रावण—अच्छा, ऋषिवर ! समझ लीजिये, आपकी तीन बातों में दो मैं मान चुका हूँ । एक आप आर्यों से ही मनवा दीजिये ।

अगस्त्य—सम्भव होने से मैं ऐसा अवश्य करता, किन्तु क्या करूँ, बात असम्भव है ।

(यवनिका पतन)

सातवाँ दृश्य

स्थान—पंचवटी

(राम, लक्ष्मण और सीता का प्रवेश)

सीता—आज अगस्त्य ऋषि भी आनेवाले हैं, सो कुछ आसन यहाँ रहने चाहिये । (लक्ष्मण चार आसन बिछाते हैं । तिनों व्यक्ति बैठते हैं ।)

लक्ष्मण—अब हम लोगों के वनवासवाले तेरह साल और डेढ़ महीने बीत चुके हैं ।

राम—और क्या, केवल साढ़े दस महीने और काटने हैं । यहाँ पंचवटी में लगता तो अच्छा है ।

सीता—क्या कहना है ? यहाँ प्रकृति अपनी शोभा का स्वास प्रसार करती रहती है । है तो वन, किन्तु उपवन का भी आनन्द देता है । भला एक बात पूछती हूँ ।

राम—एक नहीं दो पूछो: क्या कहती हो ?

सीता—निशाचर हैं तो बहुत ही बुरे; उनके खाये हुये आर्यों के हाड़ों का टीला-सा देखकर आपको उचित ही क्रोध आया ।

लक्ष्मण—भाभीजी ! आपने सुना ही होगा कि दादाजी ऐसे आवेश में आये कि वहीं दक्षिण हाथ उठाकर प्रण कर बैठे कि यदि पृथ्वी को युद्धाकांक्षी निशाचरों से हीन न कर दूँ तो मैं राम नहीं ।

सीता—प्रत्येक सच्चे आर्य को ऐसा जोश आना स्वाभाविक है, किन्तु मैं पूछती हूँ कि ऐसे विचारों में क्या अशत्रु से रिपुता 'करने का पाप नहीं लगता ?

राम—यह क्या कहती हो प्रिये ! अनरण्यविनाश के अतिरिक्त भी आर्य-सभ्यता के सबसे बड़े शत्रु आज निशाचर ही हैं ।

सीता—कामवन और अनरण्य के मामले तो अब पुराने हैं, तथा आर्य-सभ्यता की बात निज्ज नहीं ।

राम—इसे निज्ज ही मानना प्रत्येक सच्चे आर्य का धर्म है ।

लक्ष्मण—महर्षि अगस्त्य पधार रहे हैं (राम लक्ष्मण बाहर जा कर उन्हें आदरपूर्वक लाते हैं । सीता जी भी अभ्युत्थान देकर प्रणाम करती और आशावादी पती हैं । सब लोग यथा स्थान बैठते हैं ।)

राम—(महर्षि से) आशा है कि आप प्रसन्न होंगे, ऋषिवर !

अगस्त्य—जब से श्रीमान् यहाँ पधारे हैं, तभी से प्रसन्नता नित्य नई प्राप्त है । निशाचरों के उत्पात भी नहीं के बराबर हो गये हैं ।

लक्ष्मण—आपकी जलसेना, जो थलयुद्ध में शिक्षित हो रही है, वह भी अब बहुत कुछ ठीक दिखती है ।

अगस्त्य—यह बात बहुत ही महत्व की हुई है । वृद्धता के कारण मैं स्वयं उसका नवीन शिक्षण न कर सकता । किसी ने इस विषय पर इतना ध्यान भी नहीं दिया था ।

राम—हम लोग बारह वर्षों से अधिक हुये, जब से इस आर्य उपनिवेश में बसे हुये हैं । आप सरीखे महात्माओं से ज्ञानोपदेश भी

कम नहीं पाया । तब आपकी कुछ भी सेवा न करने से चित्त कैसे मानता ?

अगस्त्य—यह आपकी महत्ता है कि अपने इस महत्कार्य का कथन ऐसे लघु रूप में करते हैं । मैं तो कहूँगा कि आपके यहाँ पधारने से दक्षिण में आर्य-सभ्यता का केन्द्र परम दृढ़ हो गया है ।

लक्ष्मण—यहाँ जनस्थान में खर के साथ केवल चौदह सहस्र दल है ही; इधर आपके पास भी पाँच सहस्र प्रस्तुत हो गया है ।

अगस्त्य—मैं समझता हूँ कि अब हमारा दल राक्षसों से दब नहीं सकता ।

लक्ष्मण—दबने की बात ही क्या है, जिस दिन युद्ध होगा उन दुष्टों के धुरें उड़ जायँगे । उनका सामरिक शिक्षण ऐसा ही वैसा दिखता है ।

अगस्त्य—युद्ध भी एक न एक दिन हुआ ही जानिये । उद्दण्डता उनमें कम है नहीं, केवल कोई कारण भर उठ खड़े होने की देर है ।

राम—इन दिनों खर की बड़ी बहन शूर्पणखा दो-चार बार हम लोगों से मिल चुकी है । क्या बात है, महर्षि जी !

अगस्त्य—वह आप पर मोहित समझ पड़ती है ।

राम—क्या अभी उस बुढ़िया का विवाह नहीं हुआ है ?

अगस्त्य—विवाह हुये तो प्रचुर समय बीत चुका है, किन्तु न जानते हुये रावण ने किसी युद्ध में इसके पति को मार डाला । तभी से इसका मान और अधिक करता है ।

लक्ष्मण—विशेष स्वच्छन्दता से इसका आचरण भी कदाचित् कुछ बिगड़ गया हो ।

अगस्त्य—हो सकता है, किन्तु कुछ सुन नहीं पड़ा ।

राम — भला इन लोगों का कुटुम्ब किस प्रकार से है ?

अगस्त्य—लंका में पहले निशाचरों का राज्य था । माली लंकेश था और सुमाली तथा माल्यवन्त उसके भाई थे ।

सीता—उस समय भी इनके ऐसे ही उपद्रव चलते होंगे ।

अगस्त्य—सो तो था ही!! वैशाल राजकुल के एक वंशधर पुलस्त्य ऋषि हैं, जो मेरे ग्वास मित्रों में हैं । उनके पुत्र वैश्रवण प्रजापति हो गये । उन्हीं के पुत्र कुबेर ने यक्षों का दल एकत्र करके माली को मारा तथा लंका पर अधिकार कर लिया ।

लक्ष्मण—क्या उसके कोई पुत्र न था !

अगस्त्य—नहीं, केवल तीन कन्यायें थीं जिनके नाम थे पुण्योत्कृष्टा, मालिनी और राका । कुबेर ने भारी भूल यह की कि तीनों कन्यायें अपने पिता को समर्पित कर दीं ।

राम—बड़े कुतूहल की बात है ।

अगस्त्य—बड़ी के पुत्र हुये रावण और कुम्भकर्ण, मँझली के विभीषण तथा छोटी के तनया शूर्पणखा और खर पुत्र ।

सीता—इन्होंने उत्कर्ष कैसे प्राप्त कर लिया ?

अगस्त्य—इनकी माताओं से कुबेर का विभव स्वभावशः न देखा गया । माता की आज्ञा से रावण और कुम्भकर्ण ने परशुराम के अस्त्रगुरु महादेव से शस्त्रास्त्र तथा समर-कौशल प्राप्त किये ।

लक्ष्मण—पीछे शायद निशाचरी दल जोड़ कर लंका जीत ली ।

अगस्त्य—यही हुआ । रावण के पुत्रों में मोघनाद, नरान्तक और अतिकाय प्रधान हैं, कुम्भकर्ण के कुम्भ निकुम्भ, विभीषण के तरणी-सेन और खर के मकराक्ष । इन सब में मोघनाद ने तो इन्द्र को जीता । मकराक्ष भी भारी युद्धकर्ता है । इन्द्र के युद्ध में सुमाली का बध हो गया । वृद्ध माल्यवन्त अब भी मन्त्री है ।

लक्ष्मण—उनसे युद्ध तो बनाबनाया है ; यथासाध्य उन्हीं की ओर से प्रारम्भ होना अच्छा होगा ।

अगस्त्य—ठीक ही है । अब मैं चलता हूँ, आपकी प्रेमिका शूर्पणखा देवी पधार रही हैं ।

राम—(हँस कर) बहुत अच्छा । (अगस्त्य का प्रस्थान, शूर्पणखा का प्रवेश) आइये देवी ! यह आसन है ; विराजिये ।

शूर्पणखा—बड़ी कृपा । (बैठती है) ।

सीता—हम यहाँ विदेश में प्रायः अकेली हैं । बड़ी कृपा है कि आप कभी-कभी अनुग्रह कर देती हैं ।

शूर्पणखा—मैं यहाँ विचरती ही रहती हूँ । यदि इच्छा हो तो कुछ अधिक आ-जा सकती हूँ ।

लक्ष्मण—हम लोगों पर कृपा ही होगी, यदि आपके स्वामी इन बातों से अप्रसन्न न हों ।

शूर्पणखा—मेरे स्वामी कैसे ? मैं तो अविवाहित हूँ ।

लक्ष्मण—ऐसा क्यों ?

शूर्पणखा—असली बात यह है कि अपने योग्य कोई पुरुष मुझे देख ही न पड़ा । विवाह किससे करती ?

सीता—उच्च आदर्शों की बात ऐसी ही होती है ।

राम—और क्या ? आखिर सम्राट् रावण की बहन ठहरीं ? इन के लिये विवाहों की क्या कमी हो सकती थी ?

शूर्पणखा—यही बात है, किन्तु मैं “कौवा के गले सोहारी” वाली कहावत नहीं चरितार्थ करनी चाहती थी ।

लक्ष्मण—कैसे करतीं ? महत्ता भी तो कोई वस्तु है । आपसे विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव करते हुये लोग दबते भी होंगे ।

शूर्पणखा—ऐसा क्यों ? हमारे साम्राज्य में स्वतन्त्रता की कमी नहीं है । भाई रावण की नीति में कोई कुछ भी उचित प्रस्ताव कर सकता है ।

राम—यह भी सम्यता-सम्बन्धी महत्ता की बात है ।

सीता—द्राविड़ सभ्यता है भी तो परम प्राचीन और महती । भला राजकुमारी जी ! आप को क्या कोई कमी पसन्द ही नहीं आया ? मैं समझती हूँ कि विवाह करना था योग्य ।

राम—यही मैं भी सोचता था ।

शूर्पणखा—असल बात यह है कि तुम्हें देखकर मेरा मन कुछकुछ मानता है । मैं समझती हूँ कि आपको भी इस सम्बन्ध से प्रसन्नता होगी !

राम—अहोभाग्य राजकुमारी जी ! सौन्दर्योपासक तो मैं भी रहा आया हूँ, किन्तु ।

लक्ष्मण—सौन्दर्योपासना का उदाहरण आपने दिखलाया भी अच्छा । ऐसी कुलवती अथच रूपवती अनूढ़ा कहाँ प्राप्त हो सकती है ? इतने पर भी आपके मुख से किन्तु कैसे निकला ? यही आप की गुण-ग्राहकता है ?

राम—अरे भाई ! पूरी बात तो कहने देते ! अभी इनकी अवस्था क्या है ? ऐसी छोटी स्त्रीरत्न से यदि मैं विवाह मान लूँ तो लोग क्या यही न समझेंगे कि एक बालिका को भुलाकर स्वकार्य-साधन कर रहा हूँ ।

सीता (मुस्कराकर)—यह भय तो अवश्य है ।

शूर्पणखा—राजकुमारजी ! ऐसा आपको न समझना चाहिये । मैंने भी दुनिया देखी है, और आयु में भी आपसे कुछ ही छोटी हूँगी । मुझे फुसलाने का दोष सम्राट् आप पर कभी न लगावेंगे ।

लक्ष्मण—देखने से तो आप हम लोगों से बहुत छोटी समझ पड़ती हैं ।

शूर्पणखा—मेरा शरीर ही ऐसा बना है कि आयु कुछ कम दिखती है ।

राम—कुछ क्या, बहुत कम जँचती है ।

सीता—सौन्दर्य के चकाचौंध में ऐसा प्रायः हो जाता है ।

लक्ष्मण—भाभीजी ! बुरा न मानिये तो कहूँ कि इनके अपूर्व सौन्दर्य से आपकी कुछ ईर्ष्या-सी लक्षित होती है ।

सीता—इसमें बुरा मानने की कौन-सी बात है ? क्या जानती नहीं कि मैं तादृश रूपवती नहीं मानी जा सकती ?

शूर्पणखा—ऐसा क्यों कहती हैं राजकुमारीजी ! माना कि मेरे सौन्दर्य तक आप नहीं पहुँचती, फिर भी असुन्दरी तो नहीं हैं ।

राम—कहाँ इनका साधारण रूप और कहाँ आपकी विश्व विमोहिनी चमकता हुई प्रभा ! भला कितना बीच है ?

शूर्पणखा—अपनी युवती का ऐसा अपमान आपके लिये योग्य नहीं है ।

सीता—यथार्थ भाषण में मैं अपमान नहीं मानती ।

शूर्पणखा—कहेंगे लोग ऐसा अवश्य कि इतने दिन अविवाहित रहकर मैंने आपके चुनने में कुछ शीघ्रता कर दी; फिर भी आपको तो कोई आपत्ति नहीं है ?

राम—आपत्ति भला क्या होती ? मैं ऐसी चन्द्रवदनी को पाकर अपने को धन्य समझता, किन्तु क्या कहूँ, मैं विवाहित हूँ । मेरे छोटे भाई को क्या आप पसन्द नहीं कर सकतीं ?

लक्ष्मण—आपकी गुणग्राहकता की कहाँ तक प्रशंसा करूँ ? ऐसी रूपराशि को पाकर ऐसे बहानों की आड़ लेनी क्या आपको शोभा देता है ? राजा लोग दो-दो चार-चार विवाह किया ही करते हैं ।

राम—राज्य तो आप जानते हैं कि छूट ही चुका है । यदि राजा होता तब शायद प्रसन्नतापूर्वक दूसरा विवाह कर लेता किन्तु राज्यहीन होकर कैसे करूँ ?

शूर्पणखा—इस बात की ग्लानि आप क्या करते हैं ? सम्राट् रावण के बहनोई होकर क्या एक राज्य भी न पावेंगे ?

राम—फिर भी दूसरा विवाह करना मेरे लिये अक्षम्य दूषण होगा ।

शूर्पणखा—(लक्ष्मण से) तो आपही सही । मैं आपको भी पसन्द कर सकती हूँ ।

लक्ष्मण—यह आपकी कृपा है । होता तो इसमें मेरा अहोभाग्य, किन्तु क्या कहूँ ! कहाँ पराई सेवा और कहाँ एक सम्राट् की रूपराशि, भगिनी का मान । इन दोनों पदों में कितना अन्तर है ?

राम—अन्तर मुझे विशेष नहीं दिखता ।

लक्ष्मण—जब कभी वेतन-वृद्धि के लिये प्रार्थना करता हूँ तब महाराजा भरत से आपही चुगली करने लगते हैं कि काम ही क्या करता हूँ ? अब आप ही कहिये, जितने वेतन में गुज़र करता हूँ, उसमें इनका मान क्या रह सकता है ?

शूर्पणखा—इसकी कोई बात नहीं है, राजपुत्र ! मैंने कहा न कि इस सम्बन्ध के पीछे आप एक राजा से कम न रह जायेंगे ।

•लक्ष्मण—क्या कहूँ अनिन्द्य सुन्दरी ! मैंने अयोध्या से चलते समय प्रण कर लिया था कि इनका साथ न छोड़ूँगा । यह थोड़े ही जानता था कि जंगल में ऐसी अलभ्य निधि मिल जायगी । ऐसा जानने से यह मूर्खतामिश्रित प्रण काहे को करता ?

शूर्पणखा—जब अपनी मूर्खता समझते ही हों, तब उसी को चला क्यों रहे हो ?

राम—यही मैं भी कहता हूँ । अब भी सोच लो । आखिर तो भी विवाह करोगे ही । ऐसी रूपराशि भविष्य में कहाँ मिली जाती है ? फिर पीछे पल्लताओगे ।

लक्ष्मण—आपकी शायद यह लालसा है कि एक सम्राट् की बहन मेरे सेवक की स्त्री हो । वह तो ऐसी बावली नहीं हैं कि अपना बना-बिगड़ा न समझें । (शूर्पणखा से) देवि ! आप इन्हीं को पसन्द कीजिये । मेरा रंग भी आपसे नहीं मिलता, उधर इनके रूप और रंग दोनों का साम्य आपसे है ।

शूर्पणखा—(राम से) जब ये मूर्खतावश अपना हठ नहीं छोड़ते, तब आपही सही । अब इनकार न कीजिये, राजपुत्र !

राम—मेरी स्त्री इस बात को कैसे मानेगी ? आप जानती हैं विपत्तियों से स्त्री बड़ा द्वेष रखती है, विशेषतया रूपवती से ।

शूर्पणखा—(क्रोध नाट्य करती हुई) अब मैं समझी कि मेरे साथ हास्य किनोद किया जा रहा है । अच्छा ठहरो, तुम दोनों को भ्राता

खर द्वारा बँधवाकर इस कुबड़ी को सिपाहियों के रसोई घर में भेजवा दिया, तो मेरा नाम शूर्पणखा नहीं।

लक्ष्मण—जैसी रूपराशि आप हैं, वैसा ही आचरण भी रखिये। निरपराधियों पर क्रोध क्या उचित है ?

शूर्पणखा—तुम दोनों बड़े दुष्ट और कारागार ही के योग्य हो।

राम—साध्वी ! निष्कारण इतना क्रोध ठीक नहीं। अब फिर कभी कृपा कीजियेगा।

शूर्पणखा—अब तक व्यंग्य से अपमान हो रहा था और अब खदेड़ने का भी साहस पड़ने लगा। समझ लो कि किससे बातें करते हो। मैं रावण की बहन हूँ। मेरे क्रोध का फल बुरा है।

लक्ष्मण—जानती हो कि हमारे यहाँ उत्तरी भारत में पुंश्चली स्त्रियों की नाक-कान काट लिये जाते हैं। यदि अधिक दुराचरण दिखलावेगी तो वही दशा हो सकती है।

शूर्पणखा—(जाती हुई) मेरा जैसा अपमान हुआ है, उसका पूरा बदला तुम लोगों से लिया जायगा।

(पटाक्षेप)

आठवाँ दृश्य

स्थान—समुद्र-तट

(रावण और मारीच का प्रवेश)

मारीच—अहोभाग्य कि आज घर बैठे सम्राट् के दर्शन हो गये, किन्तु मामला यहाँ बिल्कुल बिगड़ गया है।

रावण—क्या कहें ? अगस्त्य की सहायता से राम लक्ष्मण ने हमारा जनपदवाला भी उपनिवेश ध्वंस ही कर डाला।

मारीच—सच पूछिये तो अपना राज्य अब लंका भर में रह गया है।

रावण—उन दोनों उच्छृंखल राजकुमारों ने शूर्पणखा का अप-

मान कर डाला, जिससे क्रोधान्ध होकर बेचारा खर पूरी चौदह सहस्र सेना लेकर सबके साथ लड़ मरा ।

मारीच—उनको कौन पता था कि अगस्त्य की जल-सेना थल-रण में भी ऐसी सुशिक्षित हो चुकी थी !

रावण—हाय दूषण और विशिरा भी समाप्त हो गये । किसी प्रकार बच-बचाकर केवल नानाजी लंका पहुँचे हैं ।

मारीच—बड़ा आश्चर्य है कि अपनी चौदह सहस्र सेना केवल पाँच हजार से लड़कर काम आई ।

रावण—सुना जाता है कि महर्षि विश्वामित्र ने राम को अपनी सारी युद्ध-विद्या सिखला रखी है ।

मारीच—यह विश्वामित्र पूरी विष की पुड़िया है । जहाँ-जहाँ निशाचरों का बल बढ़ना देखता है, वहीं टाँग अड़ाता है ।

रावण—ऐसा !

मारीच—यही तो है । जब महर्षि वशिष्ठ तृशंकुवाले राज्य के प्रबन्धक थे, तब इसने उनके द्वारा म्लेच्छ दल स्थापित होने के कारण ही युद्ध किया, अथच हार जाने पर भी राज्य छोड़ और तपस्या करके तथा पूर्ण अस्त्र-विद्या सीखकर एवं तृशंकु के तीनों दोष क्षमा करके उस म्लेच्छ सेना को विमर्दित करके ही छोड़ा ।

रावण—सुना, इन्हीं की मन्त्रणा से सुदास द्वारा वर्चिन् भेदादि पराजित हुए ।

मारीच—फिर यज्ञ के बहाने अयोध्या की सेना ले जाकर मेरे दल को नष्ट करा दिया ।

रावण—अब तो विश्वामित्र की कोई बात नहीं है ।

मारीच—वे नहीं हैं तो अगस्त्य सामने आ गये । ये ऋषि लोग बनते धार्मिक पुरुष हैं, किन्तु राजनीति के वास्तविक सूत्रधार यही लोग हैं ।

रावण—अगस्त्य ऋषि होने के अतिरिक्त युद्धकर्ता भी हैं ही ।

सुना आजकल खर को जीतकर उनकी प्रायः सारी की सारी सेना हमारे उपनिवेश पर अधिकार जमाने में लगी हुई है ।

मारीच—यही बात है, देव ! सेनापति खर महोदय इतनी जल्दी में हुये कि युद्धार्थ मुझे तक न बोलाया ।

रावण—भला हुआ जो तुम्हीं बच गये । अब मेरा विचार यह है कि जब तक वह सेना जनपद वापस आवे तब तक उधर लुब्ध वेश में चलकर सीता को हर लाऊँ ।

मारीच—इससे क्या लाभ होगा ?

रावण—उस दुष्ट ने भी मेरी बहन का निरादर किया था, जिससे एक तो उसका मान मर्दित होगा, दूसरे उसके वियोग में राम भी नष्ट हो जावेगा ।

मारीच—यदि आज्ञा हो तो मैं भी कुछ निवेदन करूँ ।

रावण—हाँ हाँ, अवश्य कहो ।

मारीच—मेरी समझ में राम का पुरुषार्थ ऐसा अदम्य है कि उसका सामना कर सकना टेढ़ी खीर है । फिर अगस्त्य उनकी सहायता पर हैं । और भी सेना सहज ही में बढ़ जायगी ।

रावण—मतलब तुम्हारा क्या है ?

मारीच—प्रयोजन यह है कि राम से बिगाड़ करके मेरी समझ में कुल-कुशल नहीं है । इस ओर उनकी स्थिति का थोड़ा ही समय शेष है । जब यहाँ से अयोध्या वापस जायँ, तब आप आक्रमण करके अगस्त्य का बल एकाएकी ध्वस्त कर डालिये ।

रावण—तुम्हारी समझ में उतनी दूर से न वे इधर आवेंगे, न टंटा बढ़ेगा ।

मारीच—और क्या ? पूरे दक्षिण पथ पर अपना फिर अधिकार हो जायगा और यदि अयोध्यावाले हिम्मत भी करेंगे तो कम से कम अगस्त्य उनकी सहायता को न होंगे ।

रावण—और यदि राम और अगस्त्य मिलकर इसी समय युद्ध ठानें तो ?

मारीच—दीनबन्धो ! मैं आर्यों में बहुत रहा हूँ । इन लोगों की ऐसी नीति नहीं रहती । निःकारण युद्ध ठानना इनके स्वभाव के प्रतिकूल है ।

रावण—यह मैं भी समझता हूँ कि लंका पर आक्रमण करने की हिम्मत अगस्त्य को न पड़ेगी, किन्तु प्यारी भगिनी का जो अपमान हुआ तथा जनपद का उपनिवेश गया, इन दोनों बातों पर चुप्पी साध जाना क्या साम्राज्य की महत्ता के अनुरूप है ?

• मारीच—पूरी चुप्पी साधने को मैं ही कब कहता हूँ ! मैं तो प्रायः एक साल के लिये गम खाने की सलाह देता हूँ । तब तक छिपे-छिपे युक्तिपूर्वक अपनी सामरिक तैयारी भी पूरी कर ली जाय ।

रावण—जिस निशाचरी दल ने स्वयं इन्द्र को जीतकर सारे संसार का विजय किया, वह क्या केवल राम और अगस्त्य का सामना न कर सकेगा ?

मारीच—सामना क्यों न कर सकेगा, किन्तु दोनों को अलग अलग जीतना सुगम होगा ।

रावण—तुम्हारे कथन में युद्ध-कौशल का रंग है, किन्तु राम को मैं इतना अदम्य शत्रु नहीं समझता कि भगिनी-निरादर और भ्रातृवध के अपराधों पर कुछ भी दंड देने का प्रयत्न न करूँ ।

मारीच—मैं छोटे मुँह बड़ी बात क्या कह सकता हूँ, किन्तु मेरी समझ में यह कार्य दुस्साहसपूर्ण होगा ।

रावण—तुम एक बार राम से हार गये तथा दूसरी बार खर-पराजय सुन चुके हो, जिससे तुम्हारे विचारों में कुछ कादरता की दुर्गन्धि सी है ।

मारीच—जो आज्ञा । मैं तो समझता हूँ कि केवल मुझे साथ ले अकेले आपका उन प्रबल शत्रुओं के सामने जाना कुछ चिन्ता की बात है ।

रावण—अभी कल के छोकरों को ऐसे प्रबल समझना तुम्हारे ही विचार-शैथिल्य का द्योतक है ।

मारीच—मैं तो जो विनती करनी थी सो कर ही चुका, अब आशा-पालन का प्रश्न शेष है जिसमें किञ्चिन्मात्र पीछे हटते मुझे न देखियेगा ।

रावण—शाबाश मारीच ! ऐसी ही तुमसे आशा थी ।

मारीच—तो एक युक्ति बतलाऊँ ।

रावण—हाँ कहो, क्या कहते हो ?

मारीच—मैंने जंगल में उन्हें मृग का धोखा देकर दो चार बार भ्रमाया है । यदि आशा हो तो किसी भाँति उन दोनों को हटा ले जाऊँ और आप काम बना लीजिये ।

रावण—तरकीब तो अच्छी है ।

(दोनों का प्रस्थान) (पटोत्तोलन)

नवाँ दृश्य

स्थान—पंचवटी—रामचन्द्र का आश्रम ।

(सांताजी समेत राम लक्ष्मण बैठे हैं ।)

सीताजी—अब आपकी रावण से पूरी शत्रुता हो गई है ।

राम—जब उसके भाई को ही मारा, तब शत्रुता की क्या पूछनी है ?

लक्ष्मण—अब भाभीजी की रक्षा पर विशेष ध्यान रखना चाहिए । इन दिनों मित्रवर जटायु अच्छे आश्रम-रक्षक मिल गये थे, किन्तु आज-कल भाई से मिलने गए हैं ।

राम—आज ही पलटने की बात है । (एक मनोहर मृग विचरण करता हुआ कुछ दूर पर देख पड़ता है ।)

सीता—देखिए आर्यपुत्र ! उस मृग की कैसी शोभा है ? क्या उसका चर्म मिल सकता है ?

राम—इसमें क्या कठिनता है ? अभी लाता हूँ । (राम का धनुष-बाण लेकर मृग के पीछे जाना, उसका भागना ।)

सीता—नाहक मैंने आ 'पुत्र को कष्ट दिया ।

लक्ष्मण—इसमें कष्ट ही क्या है ? अभी आते होंगे ।

(दूर से 'हा लक्ष्मण' को गंभीर पुकार सुन पड़ती है ।)

सीता—दौड़ो लक्ष्मण ! तुम्हारे भ्राता संकट में पड़े हैं ।

लक्ष्मण—ऐसा न सोचिए भाभीजी ! उन पर संकट नहीं आ सकता ।

सीता—अरे सौमित्र ! क्या इसी दिन धोखा देने के लिये तुम हम लोगों के साथ आये थे ? तुम्हारे दिखाऊ भ्रातृप्रेम का मोल आज खुल रहा है । समझ रखो, मैं प्राण दे दूँगी, किन्तु तुम्हारे वश में न आऊँगी ।

लक्ष्मण—अरी माताजी ! आपको आज क्या हो गया है ? मेरे लिये ऐसे विचार ! धिक्कार है आपकी बुद्धि को ।

सीता—मेरी बुद्धि को नहीं, तुम्हारे झूठे भ्रातृप्रेम को शतशः धिक्कार है । अरे अब भी चले जाओ ; क्या भाई का निधन ही देखना चाहते हो ?

लक्ष्मण—हा माता ! अब मैं रुक नहीं सकता । ईश्वर आपको सारे अमंगलों से बचावे । (प्रस्थान)

(रावण का भित्तुक के वेश में प्रवेश ।)

भित्तुक—क्या इस भूखे के लिये कुटी में कुछ प्रस्तुत होगा ?

सीता—आइये ब्राह्मण देवता, विराजिये । अभी खाने को कुछ लाती हूँ ।

भित्तुक—(मुस्कराते हुए) राजपुत्री ! यह भित्तुक धान्य का भूखा नहीं है । कुछ क्षण के लिये ही अपने रूपलावण्य का पान करने दीजिये ।

सीता—यती जी ! तुम तो दुष्टों के से वचन बोलते हो । कृपया निकल जाओ ।

भिक्षुक—जानती नहीं, राजपुत्री ! किससे बात करती हो ? यह भिक्षुक पुलस्त्य-कुल-भूषण प्रजापति वैश्रवण का पुत्र लंकेश रावण है । मुझे केवल अधर-सुधा की भिक्षा चाहिये ।

सीता—निकलता है यहाँ से दुष्ट ! कि मैं ही भागूँ ?

रावण—भागकर कहाँ जाओगी प्राणप्रिये ! इन वज्रवत हाथों में पकड़कर कोई शिकार क्या कभी बच सका है ?

सीता—(उच्च स्वर से) दौड़ो आर्यपुत्र ! रावण यहाँ डाका डाल रहा है । उठकर भागती है । रावण उन्हें पकड़कर खींचता हुआ बाहर ले जाता है ।

रावण—चलो, मेरे रथ पर बैठ कर लंका चलो ।

तृतीय अंक

पहला दृश्य

स्थान—ऋष्यमूक पर्वत ।

(राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनूमान बैठे हैं ।)

- हनूमान—कृपासिन्धो ! यही मेरे स्वामी सुग्रीव हैं जिनके विषय में मैंने पंचवटी में विनती की थी ।

सुग्रीव—जो आपके द्वारा मोरि विपत्ति दूर हो जावे, तो हमहूँ तन मन धन से आपका काम पूरा करी ।

राम—मित्रवर ! आप अपना हाल बतलाइये ।

सुग्रीव—(हनूमान से) तुमहें सबु बताओ । मर्हि का आर्य भाषा बोलने में कुछ कठिनाई पति हह ।

राम—बेशक, हनूमानजी की शुद्ध भाषा से भी मैं इनकी ओर बहुत कुछ आकृष्ट हुआ था ।

सुग्रीव—ज़रूर साहेब ! इनकी माता अंजनी ने जहाँ इनका जुद्ध विद्या सिखवावा, वहीं ब्याकरनौं कि अच्छी सिच्छा दिलाई ।

राम—अच्छा, तब सखा सुग्रीव की कथा सुनाइये ।

हनूमान—महात्मन ! हमारे स्वामी सुग्रीव सूर्यपुत्र हैं तथा उसी माता से पहले इन्द्रात्मज बालि उत्पन्न हो चुके थे । दोनों भाइयों में प्रेम परम प्रगाढ़ था । एक बार रावण का साला मय नन्दन मायावी एक गुफा में बालि से लड़ने लगा ।

लक्ष्मण—शायद इन्हें भ्रातृवध का भ्रम हो गया ।

हनूमान—यही बात हुई और इन्होंने गुफा में शिला अटकाकर घर का रास्ता लिया । मन्त्रियों ने इन्हें राजा बना दिया और बालि की रानी तारा ने इनके साथ विवाह भी कर लिया ।

राम—(मुस्कराकर) मित्रवर ! इतनी शीघ्रता की आवश्यकता ही क्या थी ?

हनूमान—यही भारी भूल सारी विपत्तियों की जड़ हुई। ये विवाह करना ही कब चाहते थे, किन्तु शायद महारानी बनी रहने के विचार से तारा ने ही यह बात चलाई जो इन्हें अगत्या माननी पड़ी।

राम—बालि के वापस आने पर भूमेला उठ खड़ा हुआ होगा।

हनूमान—उसने इनकी स्त्री समेत सर्वस्व हरकर इन्हें देश से निकाल दिया।

सुग्रीव—तबहैं ते महात्माजी ! मैं मारा मारा घूमता हूँ। आज कल इस पर्वत पर छिपा हुआ हूँ।

हनूमान—जब श्रीसीताजी को कोई रथ पर चढ़ाये दक्षिण की ओर लिये जाता था, तब उन्होंने “राम राम हा राम” पुकार कर पट में बँधे हुये नूपुर हम लोगों की ओर फेंक दिये।

सुग्रीव—(पट देकर) देखिये महात्मा ! यही पट और नूपुर हैं।
(राम उन्हें देख और पहिचान कर हृदय से लगाते हैं ।)

राम—(लक्ष्मण से) देखो भाई ! कुछ तो पता चला। उस नीच स्त्रीचोर ने बेचारे जटायु को मार्ग में ऐसा आहत कर डाला था कि वह हम लोगों को कुछ भी न बतला सके थे।

लक्ष्मण—समझ यही पड़ता है कि यह कार्य रावण या उसके किसी सहायक का होगा।

हनूमान—जो माता सीताजी को ज़बरदस्ती लिये जाता था, वह राक्षस था ही। रथ इस वेग से जा रहा था कि हम लोग इससे अधिक कुछ न जान सके !

लक्ष्मण—दादाजी ! अब दीन सुग्रीव का संकट दूर कीजिये। भलाई करने से अन्त में अपना भी लाभ होता है।

हनूमान—यदि आज्ञा हो तो पावक प्रकट करके मैं उसकी साक्षी के साथ आप दोनों की मित्रता करा दूँ।

राम—यही ठीक है। महर्षि अगस्त्य की सेना किष्किन्धा राज्य पर आक्रमण करेगी। बालि-वध के पीछे वानरेश होकर सखा सुग्रीव हमारा भी काम करेंगे।

सुग्रीव—(राम के पैरों पर मस्तक रखकर और उठकर) महात्मा !
यहि माँ सन्देह न होगा। (सबका प्रस्थान)
(पेटोत्तोलन)

दूसरा दृश्य

स्थान—लंका में अशोक वाटिका

(सीता जी और तृजटा बैठी हैं। हनुमान वहीं एक वृत्त पर छिपे हैं। रावण का प्रवेश।)

रावण—राजपुत्री ! आपको यहाँ पधारे प्रायः तीन मास हो गये हैं। आपका दुःख पूर्णतया दूर हो ले, इसलिये मैंने अब तक बात न की। कहिये अब आप सन्नद्ध हैं न ?

सीताजी—किसलिये ?

रावण—शोकविहीन होकर बात करने को।

सीताजी—शोक तो मेरा बिना आर्यपुत्र के दर्शन हुये जा नहीं सकता।

रावण—एक न एक दिन मुझसे बात तो करनी ही होगी।

सीताजी—किस विषय पर ?

रावण—क्या आप कुछ समझती हैं ? ऐसी भोली बनती हैं मानों आज ही जन्म ग्रहण किया है।

सीताजी—भोली मैं सब कुछ बनूँ, किन्तु दुष्टों के मारे भद्रत्व का कथन तक जब चलने पावे, तब न।

तृजटा—राजकुमारीजी ! समझे रहिए, किससे बातें हो रही हैं ? अनुचित कथनों से लाभ ही क्या ?

सीताजी—बातें एक लम्पट स्त्रीचोर से करनी पड़ रही हैं । क्या मैं इसका मुख भी देखना चाहती हूँ ?

रावण—समझ लो, सुन्दरि ! कट्ट वचनों से तुम्हें कोई लाभ न होगा । स्मरण कीजिए पंचवटी में मैंने क्या प्रार्थना की थी ?

सीताजी—समझ लो, मैंने क्या उत्तर दिया था ?

रावण—तुम्हें इस पर फिर विचार करना ही पड़ेगा ।

सीताजी—तू मेरा प्राण ले सकता है किन्तु सतीत्व नहीं ।

रावण—प्राण लेकर मुझे क्या करना है ? मैं कहता हूँ कि जग-द्विजयी रावण की राजमहिषी का पद क्या तुम्हें बहुत ही तुच्छ दिखता है ?

सीताजी—जब पूज्य ःपिता के प्रणानुसार महिषी क्या, स्त्री रूप से भी प्राप्य थी, तब शैव पिनाक क्यों न चढ़ाया ? अब मैं पराई स्त्री हूँ । क्या अब भी वह समय शेष है ?

रावण—शिव मेरे गुरु हैं । उनका पिनाक कैसे चढ़ा सकता था ? आपका वर्तमान पति राज्य से निर्वासित एक भिक्तुक मात्र है । क्या लंका का साम्राज्य उसके आगे भी आपको पसन्द नहीं ?

सीताजी—यह कहते नहीं कि धनुष उठाये तक न उठा ; चले हैं गुरुभक्ति का वहाना करने । यदि ऐसी ही भक्ति थी तो उसे उठाने का प्रयत्न क्यों किया था ?

रावण—अच्छा मान लिया कि न चला; फिर इससे होता ही क्या है ? धनुष उठाने की एक युक्ति मात्र है । उसमें पट्ट होने से कोई शर नहीं हो जाता । जिस तपसी के पौरुष का तुम्हें गर्व है, ऐसे बीसों चाकर आज मेरे सामने हाथ बाँधे खड़े रहते हैं ।

सीताजी—यदि इतने पौरुषवान चाकर थे, तो उन्हीं ने पिनाक क्यों न चढ़ा लिया ?

रावण—ऐसा रूप आप में कौन उफनाया पड़ता था कि प्रत्येक वीर यत्नवान अवश्य होता ?

सीताजी—अब कौन सौन्दर्य उफनाने लगा कि पाप का भी डर शेष नहीं है ।

रावण—रूप है कहाँ जिसका इतना गर्व है ? बात यह है कि तुम तीनों ने मिलकर मेरी पुण्यात्मा भगिनी का अपमान कर डाला, जिस से अब उस तपसी से तुम्हारा संयोग न होगा यही दंड दिया गया है ।

सीताजी—तो इतना ही सही, प्रणय निवेदन की क्या आवश्यकता है ?

● रावण—यह तुम्हारे ऊपर दया की जाती है जिससे किसी नव-यौवना को वियोग विथा न मिले ।

सीताजी—कृपा करके इस दया से मुझे मुक्त ही रखिये ।

रावण—यह कैसे हो सकता है ? लंका के राज्य में न्याय अवश्य होना चाहिये ।

सीताजी—हा चन्द्रहास ! तूही मेरा दुःख क्यों नहीं दूर करती कि जिससे ऐसे अनुचित वाक्य न सुनने पड़ें ।

रावण—चन्द्रहास मेरी खड्ग है, वह तुम्हारी प्रार्थना क्यों सुनाने लगी ?

सीताजी—अब कृपा करके यहाँ से प्रस्थान कीजिये । मुझे किसी दशा में तुम्हारा मुख नहीं देखना है ।

रावण—सीते ! तू मेरा भारी अपमान प्रति क्षण करती है ; यह नहीं समझती कि केवल प्रेमार्त होकर प्रजापति वैश्रवण का पुत्र सम्राट् रावण तेरे कटु वचनों को सहता है, नहीं तो लोकपालों के समान जो मेरी महत्ता है, उसका दिगन्त में भी निरादर करके इन्द्र तक सकुशल नहीं रह सकता । मान जा मानिनि ! अब भी अपना अन्ध हठ छोड़ दे ।

सीताजी—यदि तुझे लोकपालों के समान होने का गर्व है, तो तू उन्हीं के समान धर्म पालन क्यों नहीं करता ? मुझ अनाथ अबला पर ऐसा अत्याचार करते हुये तुझे लाज भी नहीं लगती ?

रावण—तृजटे ! तू देखती है कि यह मानिनी किसी प्रकार हठ नहीं छोड़ती । अब मैं तुम्हें दो मास की अवधि देता हूँ । इसे सब प्रकार से समझाओ । फिर भी न मानने से चन्द्रहास द्वारा कट कर सिपाहियों के रसोई घर में जावेगी । (रावण का प्रस्थान)

सीताजी—माता तृजटे ! तुम्हीं कहीं से आग लाकर एक चिता रच दो, जिससे उसी की शरण लेकर मैं इस दुष्ट के अधर्मपूर्ण वचनों से बचूँ ।

तृजटा—राजकुमारीजी ! आप उतावली न हूजिये । आपके पति में वह पुरुषार्थ है कि शीघ्र मोचन होगा, ऐसा मुझे भासता है । अब रात अधिक जा चुकी है ; आप भी शयन कीजिये । कल फिर दर्शन करूँगी । (तृजटा का प्रस्थान । सीता जी का अकेली रह लाना । वृद्ध से उतर कर हनुमान का प्रणाम करना ।)

हनुमान—माताजी ! मैं भगवान रामचन्द्र का दूत होकर आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । (एक मुद्रिका देकर) यह मुद्रिका, स्वामी ने पहचान को, आपके लिये मुझे दी थी ।

सीताजी—(मुद्रिका को पहचान कर हृदय से लगाना) मुद्रिका तो आर्यपुत्र ही की है, किन्तु उनसे आपका साथ कैसे हुआ, सो तो कहिये ।

हनुमान—माताजी ! आपके हरे जाने पर कई दिनों तक स्वामी घोर विलाप करते रहे । समझ पड़ता था कि संसार के सब कामों से मुख मोड़ कर त्यागी हो जायँगे ।

सीताजी—तब तब !

हनुमान—अंत में लक्ष्मण और अगस्त्य ऋषि के बहुत कुछ समझाने पर धैर्य धारण किया । अनन्तर ऋषिवर ने मुझे वहीं बोलवाया, और मैंने स्वामी की मैत्री वानरराज सुग्रीव से कराई ।

सीताजी—वानरेश तो बालि थे ।

हनुमान—उनके राज्य पर स्वामी और सुग्रीव ने अगस्त्य की

सेना लेकर आक्रमण किया। उसी सम्बन्ध में बालि सुग्रीव का द्रव्य युद्ध होने लगा और जब स्वामी ने देखा कि सुग्रीव हारने ही को थे तब प्रचार कर एक ही बाण से बालि का वध कर डाला।

सीताजी—इस प्रकार सुग्रीव वानरेश हुये।

हनूमान—हाँ, माताजी ! स्वामी ने बालिपुत्र अंगद पर भी कृपा करके उसे युवराज बना दिया। अब आपका पता लग गया है तथा वर्षा ऋतु भी समाप्त हो चुकी है ; लंका पर आक्रमण हुआ ही जानिये।

सीताजी—पुत्र, जुग-जुग जीवो, और आर्य पुत्र सदैव कृपा करें।

हनूमान—बड़ी ही अनुकम्पा हुई, माताजी ! अब यदि आज्ञा हो तो इस वाटिका को उजाड़ कर दुष्ट राक्षसों पर भगवान का कुछ बल प्रकट कर दूँ। मुझमें कोई शक्ति तो है नहीं, किन्तु आपके आशीर्वाद से सब कुछ हो सकता है।

सीताजी—समझ लो पुत्रवर ! लंका में भारी वीरों की कमी नहीं है।

हनूमान—आपके आशीर्वाद का माहात्म्य भी क्या कम है !

सीताजी—अच्छा, वत्स ! तुम यहाँ पहुँचे कैसे ?

हनूमान—आपको खोजने के लिये बहुतेरे वानर भेजे गये थे। जटायु के भाई सम्पाति से पता मिला और समुद्र तैरकर मैं सेवा में उपस्थित हो गया।

सीताजी—बीच में छायाग्राहिणी सिंहिका राक्षसी लगती है।

हनूमान—आपके आशीर्वाद में वह शक्ति है कि उस दुष्टा का अति शीघ्र काम तमाम हो गया।

सीताजी—और लंका द्वार की रक्षिका लंकिनी से कैसे बच निकले ?

हनूमान—वह तो एक मुष्टिका से ही चलित धैर्य हो गई।

सीताजी—तुम्हें देखकर तीन मास के पीछे हृदय शीतल हुआ

या । उधर यदि तुम पर विपदा आगई, तब आर्यपुत्र को सन्देश कौन सुनावेगा ?

हनूमान—आप हँस कर आशा भर दे दीजिये, फिर देखिये तमाशा ।

सीताजी—अच्छा, जाओ, आर्यपुत्र का यश विस्तीर्ण करो ।

(यवनिका पतन)

तीसरा दृश्य

स्थान—समुद्रतट

(राम, लक्ष्मण और सुग्रीव का प्रवेश ।)

राम—भाई सुग्रीव ! समुद्र की भी कैसी शोभा है ! एक पर एक लहर गरजती हुई ऐसी चली आती है, मानो सागर ने आज ही पृथ्वी डुबोने का प्रण कर लिया हो ।

सुग्रीव—किन्तु वे सीमा के बाहर कभी नहीं जातीं ।

राम—देखो किनारा कितना स्वच्छ है ! मानो समुद्र नित्यप्रति लहरोंरूपी दुर्मुटों से कूट कर सड़क बनाता हो ।

लक्ष्मण—यह स्थान वायुसेवनार्थ प्रातःकाल और सन्ध्या को नित्य टहलने के बहुत योग्य है ।

राम—अवश्यमेव । हवा भी कितनी स्वच्छ आती है कि चित्त प्रसन्न हो जाता है । कितना ही प्रचंड भानुताप हो किन्तु यहाँ गरमी नहीं लगती ।

सुग्रीव—शरीर में कोई क्षत होने से दो-चार दिन समुद्र में स्नान द्वारा वह भी ठीक हो जाता है ।

राम—भाई समुद्र क्या दवा भरी हुई है । इसके निकट बसने से शरीर में कोई रोग-दोष नहीं रह सकता । अब तो तुम आर्य-भाषा ठीक-ठीक बोलने लगे हो ।

सुग्रीव—दीनबन्धो ! इसमें मैंने इन दिनों परिश्रम भी किया है ।
“करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान ।”

लक्ष्मण—भाई सुग्रीव ! अभी और लोग भी आते होंगे । यहाँ कुछ आसन क्यों न बिछवा दिया जाय । आज यहीं दरबार हो ।

सुग्रीव—अच्छी बात है । अरे कौन है (प्रतीहारी का प्रवेश)
ज़रा यहाँ कुछ आसन बिछवा दो ।

प्रतीहारी—जो आज्ञा । (वैसा ही करता है । दोनों बैठते हैं)
(अगस्त्य, अंगद, जाम्बवन्त और हनूमान का प्रवेश ।)

राम—(इन चारों से) आइये, विराजिये । (सब बैठते हैं ।)

• सुग्रीव—कहिये ऋषिवर ! अब आक्रमण का क्या विचार है ?

अगस्त्य—हनूमान ने तो साहस द्वारा कार्यारम्भ कर ही दिया है ।
अक्षयकुमार, मन्त्रिपुत्रों तथा कई मन्त्रियों को मार कर अशोक-वाटिका
अकेले ही उजाड़ डाली ।

अंगद—ऋषिवर ! इन्होंने हम लोगों की लाज रख ली । मेघनाद
द्वारा बाँधे जाकर भी रावण की सभा में किस निर्भय रूप से कहा—

‘खायों फल मोहिं लागी भूखा, कपि स्वभाव ते तोर्यों रूखा ।

जिन मोहिं मारा तिन मैं मारा, तापर बाँध्यो तनै तुम्हारा ॥’

लक्ष्मण—किसी ने यह उत्तर क्यों न दे दिया,
निशिचर रुचि बस खैहौं तोही, बिलगु तात जनि मानेसि मोही ।

अंगद—ये भी तो कह देते,
जो मम मुष्टिक सकहिं सम्हारी, तौ मोहिं खाहिं औसि तमचारी ।

अगस्त्य—अरे हँसी ठट्ठा छोड़कर ज़रा मामले पर आओ ।

जाम्बवन्त—इन्होंने लंकादहन करके स्वामी की महत्ता सारे शत्रु
नगर में स्थापित कर दी ।

राम—हनूमान को सहस्रशः धन्यवाद हैं । मैं इनसे उन्मृण नहीं
हो सकता ।

हनूमान—यह क्या आज्ञा होती है, स्वामिन् ! मैं क्या और
मेरा पौरुष क्या ! यह तो आपके आशीर्वाद भर का फल है ।

जाम्बवन्त—अच्छा, अब भविष्य के विषय में बात हो ?

राम—इस अगाध समुद्र को कैसे पार किया जाय, यही सबसे जटिल प्रश्न है ।

अगस्त्य—आपकी कृपा से मेरे पास बहुतेरे सुदृढ़ जलपोत हैं । फिर मेरे जलदल को यहाँ का पूरा समुद्र भलीभाँति ज्ञात है । इस स्थान पर लंका तक उथला पानी है और बीच-बीच में टीले उठे हैं ।

सुग्रीव—हमारे नलनील सेतु-रचना के कार्य में परम पटु हैं ।

अगस्त्य—बस, मार्ग मेरे लोग बता देंगे तथा सेतु आपकी सेना रच डाले ।

राम—सो तो ठीक है, किन्तु उतरने पर निशाचरी सेना तुरन्त आक्रमण करके बीच ही में काम न बिगाड़ देगी ?

अगस्त्य—इसका भी इलाज मेरे पास है । जलयानों पर चढ़कर अपनी कुछ सेना रात ही में उस ओर पहुँच रहे, तथा जब मुख्य दल पुल के मार्ग से उतरने लगे, तब शत्रु से उसकी रक्षा करे ।

राम—यह युक्ति बहुत ठीक है । अच्छा, मैं समझता हूँ कि वानर-रीछों की सेना अपने पास अब कम नहीं है । ऐसी दशा में यदि ऋषिवर का दल जनपद के प्रबन्ध ही में छोड़ दिया जाय, तो क्या बुरा, जिसमें उस ओर भी राज्ञसों द्वारा कोई गड़बड़ न हो सके ।

सुग्रीव—बात तुक की है ।

अगस्त्य—ऐसी दशा में देखने में ऐसा समझ पड़ सकता है कि मेरी सेना ने मुँह छिपाया ।

राम—सो क्यों ? उधर का प्रबन्ध भी परमावश्यक है । आपके सैनिक वहाँ का हाल पूरा जानते हैं, और उस ओर राज्य भी आप ही का है ।

अगस्त्य—है तो ठीक, किन्तु मैं यही सोचता था कि कहीं मेरी स्वार्थपरता न प्रकट हो ।

राम—नहीं, बिल्कुल नहीं । आपके साहस तथा औदार्य पर कोई अन्धा भी सन्देह न करेगा ।

अगस्त्य—जैसी इच्छा; मेरे पास कई ऐसे अमोघास्त्र हैं जिनसे शीघ्रातिशीघ्र निश्चिन्त विनाश हो सकता है। उन्हें आप ग्रहण कर लीजिये।

राम—बड़ी कृपा होगी। तब फिर यही निश्चय रहा कि जब सेतु रच कर वानरी सेना लंका में सकुशल पहुँच जाय, तब आप ससेन जनपद पधार जाइये। (प्रतीहारी का प्रवेश।)

प्रतीहारी—जै जै ! रावण का भाई विभीषण शरणार्थी के रूप में बाहर प्रस्तुत है।

राम—यह बड़े आश्चर्य की बात है; कहिये क्या सलाह है !

लक्ष्मण—मैं तो उसे जानता नहीं, न इस प्रान्त का ही विशेष ज्ञान रखता हूँ, किन्तु नीति का वचन अवश्य है कि शत्रु का एकाएकी विश्वास न कर लेना चाहिये।

अंगद—समझ मुझे भी ऐसा ही पड़ता है।

जाम्बवन्त—नीति का वचन ऐसा है अवश्य, किन्तु यह सामान्य कथन भर है; प्रत्येक विशेष अवस्था में सभी अन्य ज्ञात बातों पर विचार करना श्रेयस्कर है ही।

हनूमान—लंका से हम लोगों के कुटुम्ब का वैवाहिक सम्बन्ध भी है। विभीषण आत्मोत्कर्ष चाहनेवाला, किन्तु बात का धनी समझा जाता है।

सुग्रीव—बहुत ठीक है। वर्षों तक कुवेर का सेनापति रहा, किन्तु न रावण के भेद उधर कहे, न यक्षों के इधर।

राम—भ्रातृ विरोध तो जातीयता और देशप्रेम के कुछ प्रतिकूल दिखता है।

जाम्बवन्त—भ्रातृप्रेम विभीषण में सदैव से कुछ कम था। महाराजा सुग्रीव के मान से शायद वे भी प्रोत्साहित हुये हों।

सुग्रीव—विभीषणजी जातीयता और देशप्रेम से कुछ दूर हैं, केवल महत्वाकांक्षी और बतधर पूरे हैं।

राम—तब तो अपने काम के व्यक्ति हैं ।

अंगस्त्य—उनका आना मैं बड़ा ही शुभ लक्षण समझता हूँ ।

राम—(अंगद से) जाइये, आप स्वयं उन्हें आदरपूर्वक ले आइये ।

अंगद—जो आज्ञा । (बाहर जाकर विभीषण के साथ पलटता है । सब लोग अभ्युत्थान देते और स्वयं राम उनसे गले मिलते हैं । सब यथा-स्थान बैठते हैं ।)

राम—कहिये कृपासिन्धो ! क्या आज्ञा है ?

विभीषण—दीनबन्धो ! सम्राट् रावण का विमात्र भाई मैं विभीषण अपमान से कुंठित होकर भवदीय शरण में उपस्थित हूँ । आज्ञा की प्रतीक्षा करता हूँ । ग्रहण किये जाने से तन, मन, धन से सच्चा सहायक रहूँगा ।

राम—(प्रतीहारी से) थोड़ा-सा सरितपति का जल तो लाना ।

प्रतीहारी—जो आज्ञा । (बाहर जाकर समुद्र का जल लाता है ।)

राम—(समुद्र-जल से विभीषण का अभिषेक करते हुए) मैं लंकेश के पद पर आपका अभिषेक करता हूँ । यदि मेरी शक्ति ने काम दिया और रावण युद्धोन्मुख रहा तो आप अति शीघ्र अपने पद पर पहुँचेंगे ।

विभीषण—(दंड प्रणाम करके) उदारता इसी का नाम है । मैं केवल मानरक्षा के विचार से सेवा में उपस्थित हुआ था । इतने बड़े पुरस्कार की न तो मेरी योग्यता है न कामना ।

लक्ष्मण—यद्यपि आपको इसकी इच्छा नहीं है, तथापि भाईजी का दर्शन अमोघ है । यह निष्फल नहीं जा सकता ।

विभीषण—जो आज्ञा । मैं अब चरणों में आ ही गया हूँ । जिस सेवा पर लगा दिया जाऊँ, उसी के लिये सन्नद्ध हूँ ।

राम—किन्तु यह तो बतलाइये कि आप अपने भाई से क्रुद्ध क्यों हुये ?

विभीषण—युद्ध सम्बन्धी मन्त्रणा लंका में हो रही थी। मैंने निशाचरों की असमर्थता तथा भवदीय शक्ति की प्रकृष्टता का विवरण किया और यह भी मानता हूँ कि मेरे ये कथन कुछ तीव्र शब्दों में हो गये।

राम—तब !

विभीषण—वे ज्येष्ठ बन्धु और स्वामी थे। मूर्खता पर डाट देते या समझा देते। उन्होंने ऐसा न करके मुझे भ्रातृद्रोही और अविश्वासपात्र कह डाला। मैंने भी कहा, जब आपको मेरे भद्रत्व पर ही भरोसा नहीं है, तो अब अविश्वास ही सही। इतनी ही बात थी।

जाम्बवन्त—कुछ कम भी न थी। प्रत्येक भद्र पुरुष ऐसा ही करता जैसा कि आपने किया।

सुग्रीव—भ्राता बालि से मेरा भी कुछ ऐसी ही बातों पर बिगाड़ हुआ था। आज से आप हम लोगों के भाई हुये।

विभीषण—बड़ी कृपा। आशा है कि इस नवीन बन्धुत्व के योग्य पाया जाऊँगा।

लक्ष्मण—धन्य धन्य ! (सबका प्रस्थान

(पटोत्तोलन)

चौथा दृश्य

स्थान—लंका, रावण की राजसभा।

(मन्दोदरी सहित सम्राट् रावण सिंहासन पर बैठे हैं। इधर-उधर उचित आसनों पर मेघनाद, कुम्भकर्ण, माल्यवन्त, महोदर, मकराक्ष, तरणीसेन और निकुम्भ बैठे हैं। अप्सरा नृत्य के साथ गाती है।)

धनि दसकन्धर परम प्रतापी ।

जग पूजित महिपाल सिरोमनि गुन अवली जग व्यापी ॥

प्रबल पराक्रम तिहुँ पुर जाहिर, आतापी बातापी ।

और अनेक भूप गन कम्पित रहे अधर रद चापी ॥

अपने कर बहु सीस काटि सिव पूजि धाक तुम थापी ।

सिलाखण्ड कैलास उठायो रिपु गन को अस छापी ॥

रावण—गाया बेचारी ने अच्छा, किन्तु दरबार का शगून हो गया, अब इसे जाने दो; जी नहीं लगता ।

(अम्बरा का प्रणाम करके साजिन्दों सहित प्रस्थान)

कुम्भकर्ण—देव ! आपका प्रताप अखंडित है और सदा रहेगा, किन्तु यदि कोई धृष्टता की बात समयानुसार कहनी पड़े, तो क्षमा की प्रार्थना अभी से किये लेता हूँ ।

रावण—ऐसा क्या कहते हो, भैया ! क्या तुम्हें भी कोई बात कहने से रोक है ? जो जी चाहे, निःसंकोच भाव से कहो ।

कुम्भकर्ण—मैं निवेदन करूँगा कि आज ऐसा दिन उपस्थित समझ पड़ता है जब हम लोग शायद राज्यवर्द्धक नहीं कहे जा सकते । क्यों न नानाजी !

माल्यवन्त—हैं बेटाजी ! बिल्कुल ठीक । क्या कहूँ, मैं वहीं बैठा रहा, और बेचारे खर का विनाश हो गया । हम लोगों ने अग्रस्त्य की सेना भर का विचार किया, किन्तु राम का प्रचंड पुरुषार्थ ध्यान में न आया था ।

महोधर—उनका पराक्रम कुछ ऐसा विशाल है कि सुबाहु, मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा और बाली तक से महावीरगण उनके एक ही एक बाण के वार न सम्हाल सके, और बेचारे सदा के लिये अस्त हो गये ।

मेघनाद—पौरुष तो उनका महान है, ऐसा मानना ही पड़ेगा । जगद्विजयी स्वयं परशुराम उनसे दब गये ।

रावण—वे कभी दबनेवाले न थे, किन्तु यह विश्वामित्र की आत्मीयता का प्रभाव था कि वे भी निरुत्तर हो गये । मुझे बड़ा शोक यह है कि प्रिय पुत्र अक्षयकुमार लंका ही में बैठा हुआ हनुमान के द्वारा मारा गया ।

मेघनाद—हम लोगों को क्या पता था कि उस वानर में भी ऐसा बल है ?

कुम्भकर्ण—वह तो दादाजी ने तुम्हें भेज दिया जिससे वह बाँध लिया गया, नहीं तो उसके द्वारा कुछ और वीरों का भी अमंगल सम्भव था ।

रावण—राम का बल अवश्य महान् है, किन्तु हिम्मत हारने की कोई बात नहीं सम्भव पड़ती । यह विभीषण की कादरता मात्र थी जिससे वह भागकर शत्रुपक्ष में जा मिला ।

तरणीसेन—क्या कहूँ देव ! मुझे पिताजी की ऐसी कार्यवाही से मुख दिखलाते नहीं बनता । जातीयता को वे एकदम धोलकर पी गये ।

कुम्भकर्ण—बेटा ! तुम इस बात की क्या ग्लानि करते हो ! अपनी-अपनी समझ है । कौन नहीं जानता कि तुम भगोड़ों में न हो कर समय पर देश और निशिचर कुल के लिये जान तक देने वालों में हो ।

तरणीसेन—बड़ी कृपा, ताऊ जी ! जो अब भी आपका विश्वास मेरे ऊपर जैसे का तैसा बना हुआ है ।

रावण—इसमें क्या सन्देह है; बेटा जी, तुम कोई ग्लानि न करो । (महोदर से) अब आप कहिये; शत्रुसेना का आगमन स्वयं लंका में हो चुका है । क्या मन्त्र ठीक है ?

महोदर—दीनबन्धो ! वानर-भालुओं की सेना को तो हम लोग माल नहीं गँठते ? उनमें हनूमान अवश्य पराक्रमी है, और कुछ अंगद भी ।

माल्यवन्त—फिर भी इन लोगों का बल शारीरिक मात्र है, अस्त्र-विद्या या समरशास्त्र का नहीं । इन बातों में वे दोनों बन्धु ही महान् हैं, विशेषतया राम ।

रावण—सोचना यह चाहिये कि इतरों को जाने दीजिये, क्या युवराज के नागपाश, वायुयान आदि का सामना ये लोग कर सकेंगे ?

मेरी भी अमोघ शक्ति एक का काम तमाम कर ही देगी। उधर भाई कुम्भकर्ण के आगे कोई वानर-भालु है ही क्या वस्तु ?

कुम्भकर्ण—फिर नरान्तक, मकराक्ष, तरुणीसेन, अतिकाय आदि एक से एक योद्धा ऐसे हैं जिनका किसी से एकाएकी पराजित हो जाना ध्यान में नहीं आता।

महोदर—क्या बाली, खर आदि कुछ कम थे ?

मन्दोदरी—यही सोचकर आज यह विचार सभा संयोजित की गई है। अपने वीर गण इन्द्रादि को जीत कर सारे जगत को परत किये बैठे हैं। क्या इन तापसों का सामना ये न कर सकेंगे ? तो भी कुछ चिन्ता है ही।

माल्यवन्त—कम-से-कम विभीषण का यही मत था, नहीं तो वह पुरुषाधम भागता क्यों ?

कुम्भकर्ण—वह अपनी सच्चाई का बड़ा अभिमानी है। अविश्वासी कहे जाने से जामे के बाहर हो गया। बन्धु-विरोध थोड़ा-बहुत सदा से करता आया था, किन्तु जब साम्राट् ने उसे भ्राता-द्रोही भी साफ़-साफ़ कह दिया, तब उसके आत्म-गौरव को भारी धक्का पहुँचा।

माल्यवन्त—उस नीच को चाहिये था कि ज्येष्ठ बन्धु के पैरों पड़कर क्षमा प्राप्त करता, न यह कि जिन आक्षेपों से मानहानि समझता था, उन्हीं की सत्यता प्रमाणित करने लगता।

रावण—अब उसका कथन क्या करते हैं, नानाजी ! राजनीति के विषय में विचार कीजिये। अब करना क्या योग्य है ?

मेघनाद—मैं समझता हूँ कि बुवाजी का अपमान तथा काकाजी का अमंगल करनेवाले एवं अपने दोनों उपनिवेश छीननेवाले से यदि सन्धि की जाय, तो दबकर ही हो सकती है, अन्यथा नहीं।

रावण—प्रकट ही है। ऐसा करने से हम साम्राट् तो रह न जायेंगे, लंकावाले खण्ड राज्य के स्वामीमात्र रह सकते हैं।

तरणीसेन—यही देख पड़ता है। अपना पक्ष कुछ दबा हुआ नज़र आता नहीं कि इतना भारी अपमान अंगीकार किया जाय।

महोदर—मुझे राम का पुरुषार्थ ऐसा गम्भीर दिखता है कि युद्ध में असाफल्य का भी भय माना जा सकता है।

रावण—आपका मत क्या है ?

महोदर—मैं सोचता हूँ देव ! कि इस समय गौं-गाँठ कर किसी भाँति संधि कर ली जाय। भगिनी के अपमान का बदला लिया ही जा चुका है।

मन्दोदरी—ये दोनों ही अपमान मौखिक मात्र हैं। रहा कुछ वीरों का विनाश और कुछ भूमि का निकल जाना, ये बातें स्वतन्त्रता के दाम हैं। थोड़े ही दिनों में राम अयोध्या चले जावेंगे और तब युक्ति से फिर बलवर्द्धन किया जाय। मेरी भी सम्मति मन्त्री महोदरजी से मिलती है।

मेघनाद—माताजी ! ऐसा पोच विचार आप दृढ़ कर रही हैं, यह महदाश्चर्य है। जिसके देवर, पति, पुत्र, भतीजों आदि में इतना पौरुष हो, उसे क्या कादरपन की ओर चित्त चलाना चाहिये ?

मन्दोदरी—लाल मेरे ! यह कादरपन नहीं राजनीति है। क्या बेटा अक्षय और खर के दर्शन मुझे फिर होंगे ? यह चाँद-सा मुखड़ा मेरे सामने बना रहे; मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

रावण—क्या साम्राज्य भी तुम्हें साधारण समझ पड़ता है ?

मन्दोदरी—है तो भारी वस्तु, किन्तु अपने कुटुम्ब की जो यह फुलवारी फूली है, उस बनजबन में तुषार पड़ने का भय मुझे व्याकुल करता है। आप लोग चतुर हैं, समझ लीजिये।

माल्यवन्त—बेटी ! जो बातें आपने कही हैं, वे एक कुलवती देवी को पूर्णतया शोभा देती हैं। जो मत महोदर ने प्रकट किया है, उसमें भी बहुत-कुछ सार है। फिर भी इतना सोचना ही पड़ेगा कि बिना कोई जोखिम लिये महत्ता की प्राप्ति तथा रक्षण दुस्तर होते हैं। उधर जोखिम की भी एक सीमा है ही।

कुम्भकर्ण—इन्द्र के युद्ध में स्वयं दादाजी और हम दोनों बन्धन में पड़ गये थे, किन्तु बेटा मेघनाद ने उसे जीतकर हमारी लाज रख ली। क्या उससे भी विशेष खटका इन तापसों के प्रभाव में दिखता है ?

माल्यवन्त—दिखता अवश्य है। मैं भी दुनिया देखते-देखते आयु की दसवीं दहाई में पहुँच चुका हूँ। इतना पराक्रम मैंने अद्यावधि किसी में नहीं देखा सुना, जितना राम में प्रस्तुत है। पराजय अपनी निश्चित नहीं कही जा सकती, किन्तु सन्देह को स्थान अवश्य है।

रावण—तो नानाजी ! आपका निश्चित मत क्या है ?

माल्यवन्त—देव ! मैं यदि अपना पक्ष गिरता देखूँगा, तो पहले ही युद्धस्थल में कूदकर यह वृद्ध जीवन समाप्त कर दूँगा। यह फूली फुलवारी उजड़ती हुई मुझसे न देखी जायगी। जब से खर का अमंगल हुआ है, तब से स्नायुरोग मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है। चित्त को बहुत समझाता हूँ, किन्तु नहीं समझता। बेचारा सोते जागते मेरी सम्मति के प्रतिकूल कभी न गया।

मकराक्ष—पूज्य बड़े नाना जी ! आपके वचन बहुत ही प्रेमपूर्ण और हृदय पर प्रभाव डालनेवाले हैं। हाय, यह कौन जानता था कि हम लोगों के होते हुए पितृ चरण पर यह विपत्ति आवेगी ?

रावण—भाई कुम्भकर्ण और बेटा मेघनाद ! अब तुम्हीं दोनों इस प्रश्न का निर्णय करो। वृद्ध नानाजी पर बुढ़ापे में ऐसे कष्ट पड़ेंगे, यह कौन जानता था ? बेचारे के दोनों भाई जा ही चुके हैं, अब दौहित्रों पर नौबत है। बेटा मकराक्ष का भी दुःख विचारणीय है।

मेघनाद—दशा तो बड़े नानाजी की अच्छी नहीं। इस अवस्था में बड़े-बड़े निर्मोही लोग भी प्रेम-विह्वल हो जाते हैं। उधर सारे साम्राज्य का प्रश्न है। स्वयं आपका क्या विचार है ?

रावण—इतने दिनों से सम्राट् हूँ कि खण्ड राज्य का पद मुझसे भोगा न जायगा। मैं तो तुम्हें राज्य देकर तपस्या करने चला जाऊँगा। पराजय का भय भी मुझे थोड़ा दिखता है।

कुम्भकर्ण—मेरी समझ में भी भय की कोई बात नहीं है। मैं निश्चयपूर्वक युद्धमन्त्र देता हूँ।

मेघनाद—यही मेरी भी सम्मति है। जो होगा देख लिया जावेगा। अपने भी प्रचंड शस्त्रास्त्र खेलौना नहीं हैं।

मन्दोदरी—समझ लो बेटाजी ! पीछे पछुताना न पड़े।

मेघनाद—माताजी ! पछुताने का समय आपके आशीर्वाद से न आवेगा। आप धैर्य धारण कीजिए। वीर-प्रसविनी माताओं को हिम्मत भी रखनी पड़ती है। फिर वीरों को शूर कहते ही हैं।

मन्दोदरी—यों ही सही। देखा जायगा। निश्चित हार का रूप तो सामने है नहीं, केवल कुछ सन्देह की बात है।

रावण—सब लोग समझ बूझ लो ; मैं कोई हठ नहीं करता।

कुम्भकर्ण—सब समझे हुये हैं। (कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—जै-जै सम्राट् ! राम का दूत अंगद बाहर प्रस्तुत है।

रावण—उसे आदर पूर्वक भेजो। (कंचुकी का प्रस्थान—अंगद का प्रवेश)

अंगद—जै जै देव !

रावण—आओ बालिनन्दन ! कहो सकुशल तो हो ? विराजो।

अंगद—आपकी कृपा से पिताजी के पीछे से सब क्षेम-कुशल ही है।

रावण—आज दूत के रूप में तुम्हें यहाँ देखकर कुछ आश्चर्य सा होता है। अपनी नियुक्ति के प्रमाण पत्र मन्त्री महोदर को दे दो।

अंगद—जो आज्ञा। (महोदर को प्रमाण पत्र देता है।)

महोदर—(प्रमाण पत्र देख कर) इनकी नियुक्ति सिद्ध है, देव !

रावण—(अंगद से) हाँ, अब कहो, तुम्हारे स्वामी रामचन्द्र को क्या कहना है ?

अंगद—वे सम्राट् से अब भी युद्ध नहीं चाहते। जो कुछ हो गया, वही बहुत है। अब सन्धि कर ली जाय तो अच्छा है।

मेघनाद—फूफी जी का जो मौखिक अपमान हुआ, उसका बदला

मिल चुका है। अब वे अपनी कुलवती तथा शुद्ध रानी को ले जावें, हमें कोई आपत्ति नहीं। रहा जनपद का उपनिवेश, वह उन्हें वापस करना होगा।

अंगद—हमारे स्वामी को आपकी भूमि नहीं चाहिये थी, किन्तु नर-भक्षण आर्यों को असह्य था, और है। यदि इस विषय पर कोई मत दृढ़ हो जाय, तो अन्य बातों का निर्णय सुगमतापूर्वक हो सकेगा। उपनिवेश की भूमि तो निकल चुकी है। किन्तु हमारे स्वामी आधी-पर्धी फेरने को शायद सन्नद्ध हो जावें।

रावण—यह आप जानते ही हैं कि हम लोगों में सम्भावित गण्यमान्य महाशय नर भक्षण के निकट नहीं जाते, और केवल निम्न श्रेणी के ही निशाचर ऐसा करते हैं। हम लोग स्वयं उसे बुरा कहते तथा रोकने की चेष्टा करते रहते हैं। फिर भी राजाज्ञा से यह रोक नहीं जा सकता, क्योंकि उनमें इसका प्रचार अधिकता से है तथा रुचि भी विशेष है।

अंगद—तब फिर हमारे स्वामी ने इसके प्रतिकूल जो प्रण किया था, वह कब सधता है ?

रावण—यह साम्राज्य इतना वचन दे सकता है कि अयोध्या की प्रजा के साथ कोई निशाचर इसका बर्ताव न करेगा, न अयोध्या की मित्र शक्तियों के साथ ही ऐसा व्यवहार होगा।

अंगद—देव जानते ही हैं कि सारी आर्य-सभ्यता एक है। यदि सम्राट् की प्रजा नर-भक्षण जारी रखती है, तो युद्ध अवश्यम्भावी है।

रावण—इस साम्राज्य को खेद है कि दबकर कोई सन्धि करने को यह सन्नद्ध नहीं।

अंगद—समझ लें देव ! एक छोटे से मामले को लेकर कितना जोखिम लिया जा रहा है ?

रावण—जोखिम युद्ध में दोनों ओर रहता है।

अंगद—सो माना, किन्तु हमारे स्वामी ने हँसते हुये जितने शत्रु

जीते हैं, उसके देखते हुये विशेष जोखिम सम्राट् ही की ओर माना जायगा ।

रावण—मैं ऐसा नहीं समझता । लंका के युद्धकर्ता कुछ गाजर-मूली नहीं हैं ।

अंगद—यदि बल का इतना गर्व है तो मैं यहाँ पाँव रोपता हूँ ; स्वयंदेव, कुम्भकर्ण और युवराज को छोड़कर यदि कोई और इसे उठा ले, तब मैं लंका को शौर्य-सम्पन्न समझूँ ।

• रावण—युद्ध में किसी को छोड़कर तो मामले होते नहीं । आप राजदूत होकर आये हैं । यह सभा युद्ध-स्थल भी नहीं । जब समर होने लगोगा, तब पौरुष की जाँच हो जायगी ।

अंगद—मैं फिर कहता हूँ कि समरांगण में सभा-चातुर्य की ये बातें न चलेंगी । अपने भाई-भतीजों की फुलवारी उजड़वाने को क्यों तुले हैं ?

रावण—आप शत्रु के दूत होकर आये हैं या मेरे मन्त्री बनकर ?

अंगद—मैं पूज्यपिता के नाते से देव को ताऊजी भी समझता हूँ ।

रावण—यदि ऐसा था, तो मुझसे मन्त्र क्यों नहीं लिया ? एका-एकी उस तापस की अधीनता में क्यों आ गये ?

अंगद—जब स्वयं पिताजी ने श्रीराम को मेरा हाथ पकड़वा दिया और सब मामले निश्चित कर दिये, तब मैं करता ही क्या ?

रावण—अपनी माता तारा को सुग्रीव से विवाह करने से क्यों न रोका ?

अंगद—यह एक साधारण बात थी । मैं उनकी स्वतन्त्रता में दंश देनेवाला कौन था ?

रावण—सो तो ठीक है । अच्छा, मेरी सन्धि के लिये एक यह भी नियम है कि राम सुग्रीव को निकालकर तुम्हें वानरेश करें ।

अंगद—इस विषय में देव यत्नवान न हों । मेरा अब उनसे तथा

काकाजी से पूरा मेल है। इसमें अब भेद नहीं पड़ सकता। सम्राट् अपने भतीजे की सलाह मानकर लंका की महत्ता जोखिम में न डालें, यही मेरी विनती है।

कुम्भकर्ण—युवराज महोदय ! इस विषय पर हम लोगों में अभी-अभी पूरा विचार होकर निश्चय हो चुका है। अब यह मत न तो राम के भय से बदलेगा, न तुम्हारे मित्रभाव-गर्भित अनुरोध से। मुझे खेद है कि ऐसा सूखा उत्तर देना पड़ता है, किन्तु साम्राज्य की मानरक्षा यदि हमी लोगों से न होगी, तो होगी किससे ? लंका अब तक किसी से दबी नहीं है, और जब तक हमारा बल अक्षुण्ण है, तब तक भविष्य भी इसका उजला रहेगा।

अंगद—क्या साम्राज्य का यही अन्तिम निर्णय है ?

रावण—यही।

(पटाक्षेप)

दृश्य पाँचवाँ

स्थान—रामचन्द्र की सेना का जंगल।

(तान वानर और एक ऋक्ष सैनिक का प्रवेश)

पहिला वानर—लड़ाई तउ यारउ अच्छी चलि रही हइ !

तीसरा वानर—जो अइसेहे चल्लि रही, तउ थोरेहे दिनन मँ जीत हाथे आई जानउ।

ऋक्ष—आजु अपनी फउज मँ दुइ दिनन की छुट्टी हइ। तले कुछ खेलइ कूद क डौलु डारा जाइ।

दूसरा वानर—अच्छा याक बात कही, खफा तो न हइहउ ?

ऋक्ष—खफा काहे ह्वाब, का पागल हन ?

दूसरा वानर—हम का सुधि आवति हइ कि किष्किन्धौ मँ तुम का याक दाँइ कहूँ ब्याखा रहइ।

ऋक्ष—अरे हमका कहाँ देखे हइहउ, की तौ ध्वाड़ा की कि पीठि पर, की वहे खातिन घास छ्वालति।

दूसरा वानर—तौनुउ तउ पूछा ।

ऋक्ष—पूछेउ का, हउ खासे अहमक (शेष दोनों साथी हंस्टे हैं ।)

पहला वानर—अरे हम तउ भाई ध्वाड़ा नाई, तउ वहि की बूबास जरूरै राखिति हइ ।

तीसरा वानर—जानि पतिं हइ उरमाल मँ थोरी लीदि बाँधे रहति होइहउ ।

• पहला वानर—हउ हुसियार, जनउं तुमहूँ ई खेल खेले बइठ हउ ।

ऋक्ष—काल्हि हम भाई तनिकि उदारता कइ गैन ।

तीसरा वानर—का किहउ भाई ? का कोई क कुछु दइ निकसेउ ?

ऋक्ष—कुछु अइसइ जानउ; याक टका की शक्कर लइकइ सरबतु पी गैन ।

दूसरा वानर—इहि माँ भाई उदारता का भइ ?

ऋक्ष—यत्तइ जनतिउ तउ बुद्धिमानइ न होइ जातिउ । अरे दुनिया के याक मनई क खुस तउ कीन । फिरि उदारता अउरि होति कइसि हइ ?

पहला वानर—साँचुइ कहेउ । इहु तिफाकु हता कि तुमहें उहु मनई हतेउ ।

ऋक्ष—यहइ तउ बातइ हइ; समुझ चही ।

दूसरा वानर—हम तउ भाई याक तीर जेउनार मँ गयेन, तउ परसइया पूछइ लाग कि का बीस रोटी दइ देई ?

ऋक्ष—फिरि तुम का कहेउ ?

दूसरा वानर—हम कहा कि का बैल हन कि बीस रोटी खाब ?
अरे धरि देउ साढ़े बइसक पउने बीसक ।

पहला वानर—हम तउ भाई याक दाई याक छन्द बना डारा ।

ऋक्ष—का बनायउ, कुछु हमहूँ तउ सुनी ।

पहला वानर—छन्द रहइ,

चटकौफ़ चटूमट से चटकात चटाचट चम्भुज के चटले ।

दूसरा वानर—अरे भाई, इहि का अर्थु तउ कुछु बतउतिउ ।

पहला वानर—यहइ तउ अउरउ त्याग पूछइ लाग ।

ऋक्ष—फिरि तुम का कहेउ ?

पहला वानर—हम कहा कि निखवख प्वाँगइ हउ ? अरे छन्दु
आजु बनावा हइ, काल्हि परउँ लगे अर्थउ बनाइ द्याव ।

(सब लोग हँसते हैं ।)

ऋक्ष—हउ भाई किंव औवलै दर्जे के ।

पहला वानर—इहि माँ का साँचु हइ ।

ऋक्ष—अरे यार ! किंव तउ हमारउ बाप हते । जब तुम छन्द
बनायउ हइ, तब हमहू ते अब बिना बनाये नाई रहा जाति हइ ।

पहला वानर—तब बनाइ काहे नाई डारति हउ ? तुम्हारि तउ
बपउतिही ठहरी ।

ऋक्ष—अच्छा सुनहु—

भटकाहट भौफ़ भटाहट से भटकौफ़ भटूमट के भटले ।

तीसरा वानर—(अट्टहास करके) अरे जब कोई बरह्या आगे
पइदा हइहइ तब इन के अर्थउ बनि जइहइ ।

दूसरा वानर—याक दाइँ हम बइठ पानी पी रहे रहन की चारि
जनी रुई लिहे जाती रहइँ । उइ रुई क काति कूति क ब्याँचै बजारै
चलीँ, अउ द्याखइँ का कि हम पनिही पी रहे हन ।

पहला वानर—अउरु का सलामत रवी येहेक नाउँ हइ ।

दूसरा वानर—वोऊ यहइ बोलीँ तउ हम डाटि क कहा कि तुमहूँ
का कुछु होसु हइ ? तुमार तउ “काता अउ लइ दउरी” क माँबिला
हइ । हियाँ एकु एकु बँदु पानी मँभारि क पिया जाति हई, रियाज
का मामला हइ ।

पहला वानर—हम तउ भाई याक दाइँ अफीम खाइ का
अइस बेहोस भैन कि खटिया के तरे गिरेन जाय क ।

दूसरा वानर—बहुतेरे मनईं यकट्टा होइगे हइहइँ ।

पहला वानर—यहइ तउ भवै कीन । त्वाग हमरे मुँह माँ हींग डारै लाग, तउ हम आँखी मुँदेहे मूँदे मुहुँ जोर ते बन्द केहे रहेन । तब त्वाग बोले कि करछुली ते मुँहुँ खोलि कइ दवा डारि दोनि जाइ ।

तीसरा वानर—तुम बहुत घबड़ान होइहउ ।

पहला वानर—अउरु का ? तब हम बोलेवै कीन, “अरे ददुआ ! काहे नसा माटी केहे देति हउ ?”

• ऋक्ष—फिरि ददुआ का बोले ?

पहला वानर—बोलतीं का, कहिनि इहतउ सार मजे मँ हइ । हमहे पाँच अहमक रहेन कि माँदा जानि क दवाई करै दउरेन ।

दूसरा वानर— फिरि पीछे कुछु बातइ भईं ?

पहला वानर—याक दिन हमका बहुत समुभावइ लाग, तब हम कहा कि “ददुवा अफीम खाति को नाईं हइ ? आजु दुनिया खाइ रही हइ । का ददुवा ! तुम नाईं खाति हउ ? मुलउ तुम अमीर हउ, गिजा उड़ावति हउ, चेहेरा दमकि रहा हइ; हम गरीब हन, हमारि खलि जाति हइ । हमरे मुँहुँ माँ माल्गी आवइ जाइ लगती हइँ ।

ऋक्ष—हम तउ भाई याक दिन नातेदारी मँ गैन, तउ खाय पियइ क पूछै लाग । हम कहेन, खटाई तौ नाईं परी हइ ? बोले हइ तउ नाईं । हम कहा, तब तौ खाब । (सब लोग हँसते हैं)

दूसरा वानर—ई बातइ तउ अच्छी रहीं, मुलउ याक बात माबिलेउ कि स्वाचइ क हइ ।

ऋक्ष—कउनि भाई ?

दूसरा बालक—भला हम पूछिति हइ कि हम पंच मनई हइ कइ बाँदर अउ रीछ काहे कहवाइति हइ ?

तीसरा वानर—का इहु हालु नाईं जान्ति हउ ? अरे हम पंचन कि घाँहन मँ रूवावां बहुत हये हइँ ! तेहेते कारी जाती रीछ कहावइ लागीं अउ जिनकी चाहइँ कुछु ललाई लिहे हइँ, उइ बाँदर बाजइ लाग ।

ऋक्ष—ई सबइ खराबी इनहें निसचरन के मारे भई । ये सार हम पाँचन कि जातिन के नायँ बिगारिनि हइ, अउ खुद समूच मनई जियति चबाइ जाति हई ।

दूसरा वानर—ई बातइ तउ ह्वातइ रहिहई, कुछु खेल-कूद की बात सोची जाय ।

ऋक्ष—हम तउ समुझिति हइ कि पइदरि वाला चउगानुइ न होइ ?

पहला वानर—हइतउ भाइउ ठीक । अच्छा दूनउ दल कउन-कउन होयँ ?

ऋक्ष—का अइस ठीक होई कि याक बार बाँदर होयँ अउ दुसरी बार रीछ अउ निसाचर ?

दूसरा वानर—यहूँ मँ कुछु मुजाका नाई हइ, मुलउ जो अइस होय तउ कइसा कि याक बार ते गेरहौ बापइ बाप होयँ अउ दुसरी बार ते उनहैन के गेरहउ लरिका ?

पहला वानर—मजा तउ यार खुबइ आई । का अइस ग्यारह ग्यारह खेलाड़ी मिलि जइहई ?

दूसरा वानर—अरे यार ! मिलि तउ बाइस-बाइस सकति हई । जब बपउना गिरति परति गेंदे के पीछे दउरिहई, तब मजा अच्छा आई ।

ऋक्ष—दउरइ मँ तउ लरिकन क पइहई नाई मुलु ख्यालै मँ वस्ताद हई ।

दूसरा वानर—हई तउ सार अइस कि लरिकन क निरा अहमक बनाय चाहई, मुलु कइयउ लरिकवउ बड़े चंट हई ।

तीसरा वानर—खेलेहे पता परी ।

ऋक्ष—कै भाई ! जीतइ कि तउ सूरति लड़ाई मँ देखाय रही हइ ।

दूसरा वानर—अरे जब खुद कुम्भकरन अउ मेघनादइ खतम हइगे तब गद गिरइ जानउ ।

ऋक्ष—ई सब निसाचर ल्वाग अपनी जीत कि बेरिया अउरेन कि मेहेरिया बिटिया खुबइ छीनिनि रहइ ; अब इनके मरे पर हमहूँ नीकी-नीकी मेहेरुवा छीनब ।

पहला वानर—बात तउ पक्की हइ जो महाराज सुग्रीव न रूवाकै ।

तीसरा वानर—उइ का रोकिहई, खुदै तारा क बियाहे बइठ हई ।

• दूसरा वानर—अरे अइसी बातइ न करउ नाई तउ कड़ी सजा पइहउ ।

ऋक्ष—साँचुइ कहेउ भाई ! अच्छा हम तउ याक आधी नीकि मेहारू चोराय छिपाइ क लाउब जरूर ।

दूसरा वानर—राजा तक खबरि तउ तब पहुँची जब कोई उजुरु करी । हुवाँ उइ तउ राजी-रोसा ते अइहई, फिरि भगइइ कौनु उठी ?

पहला वानर—इनका जउनि मिली, वहि ते माँबिलउ खुब निपटी । ई रीछ, वह बाधिनि । पास-परोस क कउनउ भागेउ न बची । इ फरिहई, वह खाय डारी ।

तीसरा वानर—फिरि येऊ कोइला अस अउ वहउ । लरिकउ बिटिया अँधेरेउ में सूझि परिहई ।

ऋक्ष—अरे असिल निसाचरी लाउब काहे ? कौनिउ ई बार कि भलीमानुस, जउनि हुवाँ फँसि गइ होई, तेहि का उबारब, जेहितेन तउ मनइन क मासु खाय न कारि होय ।

दूसरा वानर—तउ लइहउ कइसि ?

ऋक्ष—अइसि लाउब कि लगा असि ऊँचि न होइ, मियाने डील डउल कि होय । डीला अइसी आँखी धरी होई । लरिका बिटिया ससुरी के होई न, कि मेहरिया आजु लाई अउ कालहे ने भारी गिरिस्ती सँभारइ कि फिकिरि परि जाइ ।

दूसरा वानर—इहि माँ का साँचु हइ भाई ? ठीकइ ठीक कहि रहे हउ । मिलइ भरे कि द्यार हइ ।

ऋक्ष—द्याखइ क चही जो कहूँ तकदीर लड़ि जाइ ।

पहला वानर—लड़ी काहे न ? मुलु यत्ती मेहेरिया कहाँ बइठी हई कि जइसि चहउ तइसि मिलि जाइ ?

दूसरा वानर—मिली काहे न ? जब लाखन मरि रहे हई अउ भभीषन वाले निसचरन ते मेलु हये हइ, तब कउनिय न कउनिय ढँढ़े चाहई ।

ऋक्ष—भला इनमा मेहेरिया दूसर बियाहु करती हईकि नाई ?

दूसरा वानर—करती काहे नाई हई ? का मुर्दा क लेहे बइठी रहती हई ? चारिउ दिन तउ रुकती नाई हई ।

पहला वानर—अरे यारउ, आयेउ हइ छुट्टी मनावह अउ बातइ जठीलि रहेहउ बियाहेन कि । न होइ तउ तले सब जने याकयाक जटल काफियइ फिरिते उड़ाओ ।

दूसरा वानर—का मुजाका हइ, ले पहिले हमहें चलाइति हइ । आजु परेवा हइ कि नाई ?

ऋक्ष—हइ काहे नाई ? आजुइ तनखाह पैहे बइठ हन ।

दूसरा वानर—फिरि समुझि लेउ, गवामासु दिन वन्तिस बाकी । यहउ महिना रगरि लायन ।

पहिला वानर—साँचुइ हइ, महिना तउ रहा नाई, दिनै बाकी हई ।

दूसरा वानर—तनखाह तलै समुझौ । अब कोई अउरु सुनावइ ।

पहला वानर—यह तउ यार कुछु कहेउ न ।

दूसरा वानर—अच्छा, अउरि सुनउ ।

तीसरा वानर—हाँ, कहउ ।

दूसरा वानर—याक तीर तीनि अफ्रीमची पहुड़े रहई । उनमां मते पहिल दुसरे ते ब्वाला, अरे यार इहु आंबु हमरी छाती पर टपकि परा हइ, तनिकु हमरे मुहिमां तउ निचोरि देउ ।

तीसरा वानर—हते बड़े कामकाजी ।

दूसरा वानर—यहि पर तिसरे अफ्रीमची साहेब बोले कि इहु सार हइ बड़ा चादरु, कि आंबउ नाई निच्चारति हइ । अरे राति भरि कुत्ता हमार मुँहु चाटिसि, मुलु यहि के मुँहुथे द्रत न निकसा ।

पहला वानर—हम भाई याक बरात में गैन रहै । दुलहा के दुसाला हता नाई, सो हमारै माँगि क ओढ़े रहइ ।

ऋक्ष—तउ यहिमाँ का ?

पहला वानर—तले याकइ आइ क हम ते पूछै लाग कि इनमाँ लरिका कउनु हइ ? हम कहा, अरे वहइ तउ आइ जउनु हमार दुसाला ओढ़े बइठ हइ ।

ऋक्ष—हउ पूर भोंदू, सब बराती बड़े खफा भे हइहई ।

पहला वानर—होतीं काहे न ? तब दूसरे के पूछे ते हम बतावा कि वहइ तउ लरिका हइ जउनु दुसाला ओढ़े बइठ हइ, मुलु दुसाला न कहव केहिका आइ । कोई कि मरजाद काहे लेई ?

ऋक्ष—हम तउ भाई याक दिन अँधेरे के साथ याकइ में धरि कइ छोटी-छोटी रेउड़ी खाइ रहे रहन, तले अँधेरऊ जानिनि कि हम कहूँ जादा न खाये लेइति होई ।

दूसरा वानर—का उइ जादा खाइ लाग ?

ऋक्ष—हाँ, पहिले जल्दी-जल्दी खाइनि, फिरि दुइ-दुइ खाइनि अउ फिरि तीनि-तीनि । जब यत्तेउ ते न कुछु कहेन, तब सबइ रेउड़ी खैचि लिहिनि । बोले, जब लूटे हइ, तबु लूटे सही ।

तीसरा वानर—याक साल राजा इन्दर हुकुम दिहिनि कि ईदायँ कउनु बादरु बरसइ नां; तहिले एकु कनवाँ बादरु हता, तउनु बसि आवा ।

दूसरा वानर—इन्दर खफा बहुत भे हइहई ।

तीसरा वानर—इहि पर उहु ब्वाला कि बिगारु हम का कीन ? तुम का तउ दुनिया क भूखेन मारइ क हइ । हमरे बरसे ते त्वागन के

घरन मैं जउनु अनाजु होई, तउनउ बह अइहई । जब आगे न बरसे ते
सूखा परी, तब घरहू वाला जाई कि नाही ?

ऋक्ष—इहि पर तउ इन्दर बहुतुइ खुस हइगे हइहई ।

तीसरा वानर—अउरु का ?

(पटाक्षेप)

छुटाँ दृश्य

स्थान—लंका; रावण के महल का कमरा ।

(रावण, मन्दोदरी, मकराक्ष और तरुणीसेन का प्रवेश)

मन्दोदरी—क्या कहूँ ! जिस बात का मुझे डर था, वही सामने
आई । नानाजी, मन्त्री महोदर, अतिकाय, कुम्भ, निकुम्भ, बेचारा
नरान्तक आदि तो समाप्त हो ही चुके थे, प्यारे युवराज तथा कुम्भकर्ण
का निधन प्राण ही निकाले लेता है ।

रावण—है तो यही बात ।

मकराक्ष—ताऊजी ने सुग्रीव, अंगद आदि को लेकर सारी शत्रु
सेना पराजित कर डाली थी । एक-एक मूका के प्रहार से हनुमान
आदि तक अचेत हो गये थे, किन्तु राम के बाणों से कोई बस न चला ।

तरुणीसेन—उधर युवराज ने व्योमयान के सहारे राम लक्ष्मण
सहित सारी सेना दो बार हराई, किन्तु दैवयोग से वे दोनों तापस
बच गये ।

मकराक्ष—नागपाश से बेचारों ने सारी सेना बाँध ली, किन्तु
इन्द्र के भेजे हुये गरुड़ ने उसे भी ध्वस्त कर दिया ।

रावण—बेचारा थोड़ी सेना सहित अकेला निकुम्भिला में फँस
गया जिससे लक्ष्मण का दावँ चल गया ।

मन्दोदरी—मैं कहती हूँ कि अब भी सन्धि के लिये समय है ।
क्यों न दूत भेजकर भगड़ा हटाया जाय ? हाथों में चार चूड़ी तो
पड़ी रहें ।

रावण—ऐसी घबराहट क्यों करती हो, प्रिये ! अभी हो ही क्या गया है ? कलही मैंने लक्ष्मण को अमोघ शक्ति मारी थी, जिससे वह मानो मर ही चुका था ।

मकराक्ष—वह तो कहिये कि अपने राजवैद्य सुषेण की कोई औषध काम कर गई ।

तरणीसेन—हनूमान उनके बड़े काम का है । दवा न पहचानी तो पूरा का पूरा शिलाखंड उखाड़ लाया जिससे मतलब बन ही गया ।

• मकराक्ष—भला सुषेण को क्या पड़ी थी कि शत्रुओं की सहायता करने गया ?

रावण—उसने मुझसे पूछकर ऐसा किया था ! शत्रु हो या मित्र, लंका का महौषध विभाग सबके लिये समान भाव से खुला रहता ही है ।

मकराक्ष—अब आज्ञा क्या होती है, देव ।

रावण—कोई सन्धि करे या नहीं । बिना युवराज और दोनों भाइयों के मैं शरीर धारण नहीं कर सकता ; हाँ, शत्रु-विनाश हो जाने से फिर से राजकाज सम्हाल सकता हूँ ।

मकराक्ष—यह क्या आज्ञा हो रही है, जब तक आपके दोनों दास तरणीसेन और मैं प्रस्तुत रहूँ, तब तक लंका में कोई दीन वचन कैसे बोल सकता है ?

तरणीसेन—यही समझ पड़ता है ताऊजी !

मन्दोदरी—मैं समझती थी कि जो कुछ बचा है वही अब भी सम्हाल लिया जाता तो अच्छा ही था ।

रावण—कह मैं सब कुछ चुका । अब कुछ हो नहीं सकता । जैसे चल रहा है वैसा चलने दीजिये ।

मकराक्ष—ताई जी ! हिम्मत न छोड़िये । अभी कुछ हो नहीं गया है ।

मन्दोदरी—जैसी सबकी इच्छा । (सबका प्रस्थान)

(पटोत्तोलन)

स्नातचाँ दृश्य

स्थान—लंका का समरांगण ।

(दोनों सेनाये आमने-सामने खड़ी हैं । राम-रावण का युद्ध हो रहा है ।)

रावण—हे तापस ! अब आपके जो किये हो, कर लीजिए ।

राम—पहला प्रहार आपही का योग्य है । प्यारे अनरण्य का बदला अभी शेष है । (रावण विभीषण को ताक कर एक शक्ति मारता है, और राम उन्हें बचाने को आगे होकर क्षत से मूर्च्छित होकर गिरते हैं । विभीषण गदा लेकर सामने आता है, किन्तु रावण के गदा प्रहार से मूर्च्छित हो जाता है । राम और विभीषण पर्दे की आड़ में ले जाये जाते हैं ।)

अंगद—वीर लंकेश ! आपका शौर्य धन्य है, किन्तु अब मेरा सामना कीजिये ।

रावण—तुम सभा में पैर रोपना चाहते थे । अब रोप लो पैर या सारा शरीर । तुम्हें बल का गर्व है, सो अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग तुम पर न करके मैं मल्लयुद्ध ही करूँगा ।

(अंगद और रावण में मल्लयुद्ध होता है, और मुष्टि प्रहार से अंगद मूर्च्छित हो जाता है । अनन्तर इसी प्रकार लड़कर सुग्रीव के भी गिरने से हनुमान रावण को एक मृका मारते हैं जिससे वह गिर कर फिर उठता है ।)

रावण—धन्य है तुम्हारे बल को, वानरराज !

हनुमान—अरे आपके सजीव उठने से मेरे बल को धिक्कार है ।

रावण—यह गर्व ! अच्छा, अब तुमसे भी मल्लयुद्ध ही हो ।

(दोनों में मल्लयुद्ध होता है, और कछ देर में हनुमान परे संकट पड़ता है । लक्ष्मण का प्रवेश ।)

लक्ष्मण—वीर लंकेश ! कपि भालुओं को जीतने से आपको विजय न मिल जायगी । ज़रा मुझे दो दो हाथ दिखलाइए ।

(रावण हनुमान को छाँड़ता है और वे यवनिका की ओट में जाते हैं । अंगद और सुग्रीव भी ओट में लाये जाते हैं ।)

रावण—अरे मेरे युवराज के शत्रु ! तुम्हें मैं फिर से खोजता ही था । यह मेरे वैद्य की कृपा थी कि अमोघ शक्ति से तुम बच गए ।

लक्ष्मण—अब फिर से सारे शस्त्रास्त्रों का प्रयोग कर लीजिए ।

(दोनों में धनुषबाण के द्वारा युद्ध होता है और लक्ष्मण मूर्छित हो कर गिरते हैं । राम और विभीषण का प्रवेश ।)

राम—आइये, मुझसे फिर युद्ध कर लीजिये । यदि थक गये हो तो आज विराम लेकर कल या परसों जब इच्छा हो, लड़िये ।

• रावण—आपके लिये मैं हम समय भी पूर्णतया सन्नद्ध हूँ ।

(दोनों में धनुष बाणों से युद्ध होता है और रावण मूर्छित होकर गिरता है । राम का प्रस्थान । निशाचरी बल का भाग जाना । कुछ वानरों का रावण के बधार्थ दाँड़ना । विभीषण का डाटना और वानरी सेना का भी प्रस्थान । विभीषण का विजनादि उपचारों से रावण को सचेत करना । उसका बैठना ।)

रावण—अरे विभीषण ! यह क्या ? तुम और अब भी मेरी परिचर्या !

(विभीषण का साष्टांग प्रणाम करना । रावण का उठाकर उस हृदय से लगाना ।)

विभीषण—आप मेरे लिये न केवल पितृतुल्य पूज्य हैं, वरन् यह अधम शरीर आप ही के लवण से पला है । जब आपके पास अन्य सेवकों की कुछ कमी है, तब यह सेवक भी प्रस्तुत है ही ।

रावण—महदाश्चर्य ! आगिर यह मामला ही क्या है ? बात तो कहो ।

विभीषण—भद्रत्व के प्रतिकूल अपनी बुद्धि में अनुचित लांछन समझकर मैंने स्वधर्म छोड़ दिया था । यह पश्चात्ताप और कलंक मुझे यावज्जीवन छोड़ नहीं सकता । अब भवदीय आज्ञा में फिर से प्रस्तुत हूँ ।

रावण—अब तक तुमने क्या-क्या किया ?

विभीषण—अपनी बुद्धि भर योग्य सम्मतियाँ देता ही रहा, किन्तु फल के विचार से यदि मैं वहाँ न भी होता, कोई भेद न पड़ता। हाँ, युवराज का निकुम्भिला में होना मैंने ही बतलाया था। यह खेद मुझे कभी न छोड़ेगा।

रावण—इसका भी पूर्ण उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर नहीं है। प्यारे युवराज तो एक बार वहाँ से निकल गये थे, किन्तु शौर्य के मिथ्याभिमान में आकर बिना मुझे सूचना दिये वहीं फिर जा पहुँचे थे।

विभीषण—मैं समझता था कि यह बात शायद आप पर विदित न हो।

रावण—नहीं, मैं सब कुछ सुन चुका हूँ। तुम्हारे आज के विनीत आचरण से प्रसन्न होकर तुम्हें फिर से आशीर्वाद देता हूँ।

विभीषण—मुझे राज्यादि कुछ न चाहिए। अब मैं आपके शत्रुओं को स्वशत्रु मानकर युद्ध करूँगा।

रावण—ऐसा मैं नहीं चाहता ! तुमसे बहुत बड़े बड़े योद्धा जिन वीरों से लड़कर काम आ चुके हैं, उनका सामना तुम न कर सकोगे और यदि तुम भी औरों की भाँति समाप्त हो गए, तो नानाजी श्री माली महाराज का वंश ही लुप्त हो जावेगा।

विभीषण—तो मेरे लिये क्या आज्ञा होती है ?

रावण—एक तो मैं हारनेवाला नहीं, और मेरे हार जाने पर भी तुम्हारे राजा होने से लंका में अपना राज्य बना रहेगा। मुझे दुःख है कि तुम्हारा बेटा तरणीसेन मकराक्ष की सहायता में लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। क्या कहूँ, निश्चिन्त कुल के दिन ही कुछ खराब आ गए। किन्तु मैं अभी हतोत्साह नहीं हूँ। शत्रुओं को ध्वस्त करूँगा।

विभीषण—पूज्य दादाजी ! एक बार फिर विचार कर लीजिये।

रावण—जो मैंने कहा है वही ठीक है। यदि किसी भाँति मेरा भी निधन हो जावे, तब तुम साम्राज्ञी से विवाह कर लेना जिसमें उन

का शोक कुछ तो कम हो ।

विभीषण—आप पितृतुल्य होकर ऐसी आज्ञा देते हैं ?

रावण—मैं सब समझ बूझकर आज्ञायें देता हूँ ।

विभीषण—किन्तु दादाजी ! यदि चाहिए तो मैं योग्य सन्धि अब भी करा दूँ । कुछ अशक्य बात नहीं है ।

रावण—सारे कुटुम्ब को कटाकर मैं अकेला सन्धि करके ही क्या करूँगा ! देखना, शत्रु से सब का बदला लेकर ही छोड़ूँगा ।

• विभीषण—जो आज्ञा । आपके पक्ष में युद्ध करने की सन्नद्धता का हाल मैं राम से भी बतला अवश्य दूँगा ।

रावण—मैं जानता हूँ कि उनमें भी वह महत्ता है कि इस बात से वे तुम पर अणुमात्र अप्रसन्न न होंगे । (दोनों का प्रस्थान)

(पटोत्तोलन)

आठवाँ दृश्य

स्थान—नन्दिग्राम, भरत का आश्रम

(सीता, राम, वशिष्ठ, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनूमान, सुग्रीव, विभीषण और अंगद यथास्थान बैठे हैं । गायिका नृत्य करती हुई जाती है ।)

जै श्रीरामचन्द्र भुवाल ।

बालपन सों कियो वरधित ज्ञानबल सुबिसाल ॥

• ताड़काहु सुबाहु मारयो राखि ऋषिमख हाल ।

सैव चाप चढ़ाय ब्याही मैथिली ततकाल ॥

पालि पितु को वचन छोड़ों राज स्वत्व महान ।

बरष चौदह लागि मोदित कियो वन प्रस्थान ॥

रावनादिक राच्छसन हति पालि निज पन गूर्ब ।

मारि खलगन अखिल परगट कियो सुबल अपूर्ब ॥

भरत—क्या ही अच्छा गाया है ! अब जाओ, तिलकोत्सव में फिर आना । (गायिका का प्रणाम करके प्रस्थान ।)

आज वनवास के पन्द्रहवें साल का ठीक पहला दिन है । प्रातःकाल से मैं बहुत उद्विग्न था कि आप आज ही पधारते हैं कि नहीं । इतने ही में बन्धुवर हनूमान ने दर्शन दे ही तो दिये ।

राम—मैं कह तो गया था कि आज ही आऊँगा, फिर भी लंकेश की शत्रुता के कारण इसमें कुछ सन्देह भी उपस्थित हो गया था ।

वशिष्ठ—आपको नवीन मित्रों सहित देखकर हम लोग बहुत ही प्रसन्न हुये हैं । अब वहाँ का शेष हाल बतला दीजिये ।

राम—कुम्भकर्ण और मेघनाद के वध तक का हाल आप जान ही चुके हैं । उसके पीछे तरणीसेन और मकराक्ष ने विकराल युद्ध किया । उनमें से पहला मेरे हाथ से मरा और दूसरा लक्ष्मण द्वारा । पुत्र-विनाश से बेचारे विभीषण बहुत दुखी हुये ।

लक्ष्मण—अनन्तर रावण ने रोमांचकारी युद्ध किया और मुझ समेत सारी सेना को दो बार बहुत व्याकुल कर दिया । अन्त में इन्हीं के हाथ से मारा गया । क्या ही प्रबल शत्रु था ! भाभीजी की पावक परीक्षा भी लंका में हुई ।

सीताजी—गुरुवर ! आर्यपुत्र के लिये यह योग्य ही था कि परीक्षा के पीछे मुझे अंगीकार करते । जैसी प्रचंड मूर्खता करके मैंने देवर लक्ष्मण की अनुचित भर्त्सना की थी, वैसा ही फल पाकर प्रायः दश मास लंका में कारागार-सा भोगा । इतना मैं फिर भी कहूँगी कि रावण के साम्राज्य में सभ्यता उच्च कक्षा की भी थी ।

राम—गुरुवर ! महाराजा विभीषण और सुग्रीव से मेरे सब काम ही बनें । मैं इनका यावज्जीवन कृतज्ञ रहूँगा ।

सुग्रीव—यह देव का औदार्य है कि ऐसी आज्ञा करते हैं ! भला हम दोनों बनाये हुये किसके हैं ? वास्तव में शौर्य सबसे बड़ा हनूमान ने दिखलाया ।

राम—इनके सिर तो लंका विजय का टीका है ही ।

हनूमान—यह क्या आज्ञा होती है ? क्या अंगद ने कम काम किया ?

राम—अवश्य; यह तो हई है। विभीषण को राज्य उचित समय पर मिल गया और बेचारी मन्दोदरी रानी बनी रहे, इस विचार से उसका विवाह भी इनके साथ करा दिया गया।

भरत—देव के लिये वनवास से यह फल भी निकला कि जग-द्विजयी रावण को ध्वस्त करके आपने भारत में आर्य सभ्यता अखंड कर दी।

अंगद—अब निशाचरों द्वारा नर-भक्षण न होगा, न भारतीय आर्य संस्कृति में कोई कमी रहेगी।

विभीषण—इसमें क्या सन्देह है ?

भरत—अब आज ही अयोध्या में प्रवेश हों तो अच्छा, क्योंकि नगर पूर्णतया सजाया जा चुका है तथा तीनों मातायें और शेष सारी प्रजा आप सबके देखने को बहुत उत्सुक हैं।

राम—सो होगा ही।

वशिष्ठ—इन चौदह वर्षों में भरतजी ने भवदीय राज्य पूर्णतया सुपालित रक्खा, सेना पहले से कुछ विशेष ही है, शिक्षा की चौगुनी वृद्धि हुई है, व्यापार वर्द्धमान है और प्रजा परम सन्तुष्ट। इतना सब होते हुये, कोष में धन पहले से तिगुना है।

राम—जहाँ भाई भरत का निरीक्षण, आपका प्रबन्ध और सुमन्त का आज्ञा पालन हो, वहाँ ऐसा होने ही को था। फिर भी मैं सबको अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ।

वशिष्ठ—इसमें मुख्यता भरत ही की है, क्योंकि हम लोग तो उचित परामर्श देते ही रहते हैं; मुख्य बातें उसका मानना और योग्य पुरुषों का मान है, जिन बातों में ये सदा सन्नद्ध रहें।

भरत—मैं स्वामी तथा गुरुवर का सदैव ऋणी रहूँगा कि मेरी तुच्छ सेवाओं को उचित से बहुत बड़े दामों पर आँका गया है। असल सेवा भाई लक्ष्मण की है। यदि पूज्य पिताजी कई भारी-भारी यज्ञ न किये होते तो उनका भी कोष बढ़ा होता।

राम—मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि ईश्वर ने मुझे ऐसे अच्छे भाई और सहायक दिये ।

भरत—राज्यगद्दी के लिये गुरुवर ने शुभ मुहूर्त नियत कर रक्खा है तथा आप के श्रीमुख से प्रजा उपदेश भी सुनना चाहती है । आज से यहाँ सीधा रामराज्य है ।

वशिष्ठ—किसी योग्य व्यक्ति को युवराज बनाने का भी विचार इसी समय हो जाना चाहिये ।

भरत—इस विषय पर मेरा कुछ कहना धृष्टता समझी जा सकती है; फिर भी स्वामी से आज्ञा माँगकर एक विनती करना चाहता हूँ ।

राम—अवश्य कहो ।

भरत—मेरी समझ में चिरंजीव लक्ष्मणकुमार युवराज बनाये जायँ । मैं चौदह वर्ष पालक रह कर भवदीय आज्ञा का पालन कर चुका हूँ, अब अवकाश ग्रहण चाहता हूँ ।

लक्ष्मण—ऐसी आज्ञा देने का अधिकार केवल स्वामी को है, आपको नहीं । आपकी इच्छा होते हुये भी मैं आपका उचित पद नहीं ले सकता ।

वशिष्ठ—पद लेना क्या हुआ जब ये स्वयं उसे नहीं चाहते ।

लक्ष्मण—मैं ही कब चाहता हूँ ? (श्रीराम से) आज्ञा है कि आप भी मुझे इस मामले में न दबावेंगे और अवश्य ही न्याय करेंगे ।

भरत—मेरी भी सहृदय प्रार्थना है कि मैं दबाया न जाऊँ ।

राम—यह आज्ञा का प्रश्न है, प्रार्थनाओं का नहीं । योग्य बड़े के होते हुये छोटा भाई युवराज कैसे हो सकता है ?

भरत—क्या इस बार भी मैं क्षमा नहीं किया जा सकता ?

राम—नहीं ।

लक्ष्मण—मैं जानता ही था कि शुद्ध न्याय होगा और वही हुआ ।

(पटाक्षेप)

समाप्त ।

